शांति ज्ञान निकेतन स्कूल, नजफगढ़ (दिल्ली), विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर में विद्यार्थियों को ध्यान सिखाते हुए पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

वर्ष : ९
अंक : ७१
९ नवम्बर १९९८

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction.

इस अंक में

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८.

आश्रम विषयक जानकारी
Internet पर उपलब्ध है : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

आत्म प्रसाद

श्रीहरि की स्मृति से ही मनुष्य जन्म सार्थक

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड के ७८ वें दोहे में गोस्वामी तुलसीदासजी ने काकभुशुण्डिजी से कहलवाया है :

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूंछ बिषान॥

'श्रीरामचंद्रजी के भजन बिना जो मोक्षपद चाहता है, वह मनुष्य ज्ञानवान होने पर भी बिना पूँछ और सींग का पशु है।'

सारे कर्मों का तात्पर्य, मनुष्य जन्म का फल यही है कि कैसे भी करके इस जीव को परमात्म-प्राप्ति हो, परमपद की प्राप्ति हो।

शुकदेवजी महाराज परीक्षित से कहते हैं, सूतजी महाराज शौनकादि ऋषियों से कहते हैं :

एतावान्सांख्ययोगाभ्यां सर्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभ ततः पुंसां अन्ते नारायणस्मृतिः॥

'मनुष्य जन्म का इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे भी हो- ज्ञान से, भक्ति से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से, जीवन को ऐसा बना लिया जाये कि मृत्यु के समय भगवान श्रीहरि की स्मृति बनी रहे।'

परीक्षित ने प्रार्थना करते हुए शुकदेवजी से पूछा :

''मनुष्य को क्या करना चाहिए ? किसका श्रवण करना चाहिए ? किसका स्मरण करना चाहिए ? किसका जप करना चाहिए ? भजन किसका करें और त्याग किसका करें ?''

शुकदेवजी ने कहा : ''देहाध्यास का त्याग करें और श्रीहरि का भजन करें। विषय-विकार व अहंता-ममता का त्याग करें और प्रभुनाम में प्रीति बढ़ायें।''

तस्मात्सर्वमात्मनः राजन् हरि सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यो कीर्तितव्यश्च स्मृतव्यो भगवन्नृणाम्॥

इसलिए शुकदेवजी महाराज कहते हैं : ''मनुष्य को चाहिए कि सब समय और सभी स्थितियों में अपनी संपूर्ण शक्ति से भगवान श्रीहरि का ही आश्रय ले। उन्हीं का श्रवण करे, कीर्तन करे और स्मरण करे। यही मनुष्य जन्म का फल है। इसीमें मानव का कल्याण है।''

महाभारत के एक प्रसंग में आता है कि विदुरजी धृतराष्ट्र से कहते हैं :

''आप पाण्डवों का हिस्सा दे दीजिए। धर्मात्मा युधिष्ठिर एवं गांडीवधारी अर्जुन आदि के प्रति अन्याय न करें। इसीमें आपका कल्याण है। यह दुर्योधन तो मानो पापरूप में आपके कुल में जन्मा है, कलियुग के स्वरूप में जन्मा है। अतः इसके मोह में न पड़कर धर्माचरण करें।''

यह बात दुर्योधन सुन रहा था। उसने विदुरजी का घोर अपमान कर दिया और विदुरजी वहाँ से चल दिये। उसी समय से कौरव कुल के विनाश का आरंभ हो गया क्योंकि पुण्यात्मा विदुरजी का अपमान किया था दुर्योधन ने।

माण्डव्य ऋषि के श्राप से साक्षात् यमराज ही धर्मात्मा विदुर दासीपुत्र के रूप में जन्मे थे। थोड़े-से सत्संग मात्र से ही उनका देह में अहं, कर्म में कर्त्तापन और जगत् में सत्यभाव मिट चुका था। वे ज्ञातज्ञेय हो चुके थे। आत्मा की असंगता, निर्लेपता और शुद्ध-बुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप का उन्हें ज्ञान हो चुका था।

महाभारत का युद्ध हुआ और पाण्डव विजयी हुए। महाराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्र एवं गांधारी को बड़े आदर से देखते थे।

विदुरजी यात्रा करते-करते अपने ज्ञातज्ञेय पद में जागकर, अपने शुद्ध-बुद्ध आनंदस्वरूप आत्मा

को 'मैं' रूप में जानकर, निःशोक पद में प्रतिष्ठित हुए थे। वे जब हस्तिनापुर आये, तब युधिष्ठिर ने बड़े आदर-स्नेह से उनका सत्कार किया। अर्घ्य-पाद्य आदि से उनकी आवभगत करते हुए पाँचों भाइयों ने उनका सम्मान किया।

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने उनसे कहा : ''काका ! हम बालक थे, तभी से आपने हमारी खूब-खूब संभाल ली, हमारी सहायता की। लाक्षागृह से हमें जीवित बचाने में भी आपकी ही कृपा का हाथ था। उसके बाद भी समय-समय पर आप हमें सन्मार्ग बताते आये हैं। आप कुशल तो हैं ? यात्रा में आपको कैसे-कैसे अनुभव हुए ? किन-किन महात्माओं के दर्शन हुए एवं किन-किन महात्माओं से क्या-क्या प्रभु-प्रसाद मिला ?''

युधिष्ठिर विदुरजी के साथ काफी देर तक इस प्रकार की ज्ञानचर्चा करते रहे। बाद में विदुरजी धृतराष्ट्र से मिले एवं बोले :

''जिन पाण्डवों को आपने लाक्षागृह में जल मरने के लिए भिजवाने में, भूमि न देने में, अन्याय करने में अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधन का साथ दिया था, उन्हीं पाण्डवों के टुकड़ों पर अपने इस नश्वर कलेवर को कब तक पालते-पोसते रहेंगे ?

यह वृद्ध शरीर काल का ग्रास है। इससे अब आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? इस शरीर को आप कितना भी संभालेंगे, किन्तु रहेगा नहीं। इन प्राणों का मोह आप कब तक करते रहेंगे ? ये प्राण असावधानी में ही निकल जायें, उसकी अपेक्षा आप प्राणनाथ का अनुसरण करें।

भाई ! इस सृष्टि में जो भी जन्मा है, वह मरा अवश्य है। अतः आपके लिए यही उचित है कि देह, संबंधियों एवं कुटुंबियों के मोह और गेह में सत्यबुद्धि की इस अविद्या को त्यागकर एकांत में श्रीहरि की उपासना कर अपना जीवन सफल कर लें।

अभी-भी वक्त है, चेत जायें। अनजाने में ही काल-कराल के ग्रास हो जाएँ, उससे पहले सावधानीपूर्वक उस अकाल की यात्रा कर लें तो अच्छा है।

छोड़ दें देह की अहंता और संबंधियों की ममता को। अकेले आये थे और अकेले जाना है। यह बीच का झमेला कब तक संभालेंगे ?''

किसी संत पुरुष ने ठीक ही कहा है :

दुनियाँ के हँगामों में गर आँख हमारी लग जाये।
तू मेरे ख्वाबों में आना प्यार भरा पैगाम लिये॥
ना कोई संगी-साथी ऐसा जो जीवन में साथ चले।
इन मेलों में रहकर मजबूर हम अकेले चले॥

इस संसार में जीवात्मा को अकेले जाना पड़ेगा, उससे पहले अपने ईश्वरत्व का अनुभव कर ले तो कितना अच्छा होगा ! कुटुम्बी अग्निदान कर दें, उससे पहले ब्रह्मविद्या का दान पा लें तो कितना अच्छा होगा ! कान की सुनने की क्षमता क्षीण हो जाये, उससे पहले सुनने की आसक्ति मिट जाये तो कितना अच्छा होगा ! नेत्रज्योति देखने से इन्कार करने लगे, उससे पहले देखने की आसक्ति मिटा दे तो कितना अच्छा होगा ! पैर चलने से जवाब देने लग जायें, उससे पहले संसार में भटकने की इच्छा मिट जाये तो कितना अच्छा होगा !

ज्यों-ज्यों दिन बढ़े, त्यों-त्यों अपनी वासनाएँ मिटाते जाना चाहिए, संसारी आकर्षण घटाते जाना चाहिए, संसारी संबंध कम करते जाना चाहिए और सत्यस्वरूप परमेश्वर का स्मरण-चिंतन बढ़ाते जाना चाहिए। इसीमें आपका कल्याण है।

विदुरजी की बातें सुनकर धृतराष्ट्र गंगा किनारे तपस्या करने के लिए तैयार हो गये। किन्तु तपस्विनी गांधारी कैसे चुप बैठती ? वह भी साथ हो ली। माता कुन्ती भी उन्हीं के साथ हो ली।

चुपचाप रातों-रात ही हस्तिनापुर की राज्यलक्ष्मी को नमस्कार करके गांधारी और कुंती समेत धृतराष्ट्र निकल पड़े। विदुरजी के उपदेश ने काम किया। सोया वैराग्य जाग उठा।

सुबह हुई। महाराज युधिष्ठिर संध्या-वंदन, यज्ञ-यागादि करके प्रणाम करने के लिए आए तो देखा कि 'धृतराष्ट्रजी नहीं हैं, गांधारी माँ नहीं हैं और माँ कुन्ती भी नहीं हैं। अरे ! मेरे से ऐसा कौन-सा अपराध हो गया कि वे चले गये ? क्या

गंगाजी में कूद पड़े होंगे ? हम नन्हें थे, तब हमें पिता की तरह पालनेवाले धृतराष्ट्र कहाँ गये ?'

वे विह्वल हो संजय से पूछने लगे।

संजय के आगे महाराज युधिष्ठिर अपनी व्यथा व्यक्त करने लगे : ''हाय रे हाय ! मैं कैसा अधम हूँ कि पिता-तुल्य धृतराष्ट्र नाराज हो गये ! माता गांधारी एवं माँ कुन्ती भी न जाने मेरे किस अपराध के कारण मुझे छोड़कर चली गयीं ?''

संजय ने कहा : ''मुझे भी पता नहीं कि वे महात्मा लोग कहाँ गये ?''

युधिष्ठिर महाराज विलाप कर ही रहे थे कि इतने में एकाएक देवर्षि नारद वहाँ आये और बोले :

''हे युधिष्ठिर ! तुम शोक न करो।''

नारदजी त्रिकालज्ञानी हैं। जो होनेवाला है वह भी नारदजी को दिख रहा है, जो हुआ है वह भी दिख रहा है। धृतराष्ट्र गये तो पूर्व रात्रि को ही हैं किन्तु मानो छः महीने का भविष्य प्रत्यक्ष दिख रहा है।

नारदजी कहते हैं : ''हे युधिष्ठिर ! धृतराष्ट्रादि हस्तिनापुर से निकलकर गंगाजी में आत्महत्या करने के लिए नहीं गये हैं वरन् वे चलते-चलते सप्तर्षि पहुँचेंगे। तुम उन्हें विक्षेप न करना, युधिष्ठिर !

कौन किसका काका और कौन किसका भतीजा ? कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र ? वे कब तक तुम्हारे साथ रहेंगे और तुम कब तक उनकी रक्षा करोगे ? मनुष्य का तो ऐसा हाल है कि जैसे-मेढक खुद तो साँप के मुँह में पड़ा है और अपना मुँह फाड़कर अन्य जन्तुओं को निगलना चाहता है, वैसे ही मनुष्य स्वयं तो काल के मुख में पड़ा है फिर भी विषय-भोगरूपी जीव-जन्तुओं को खाने के लिए दौड़ रहा है।

जहाँ वास्तविक रक्षा हो सकती है वहीं, ऋषियों के चरणों में वे पहुँचे हैं। सप्तर्षि की प्रसन्नता के लिए गंगाजी जहाँ सात धाराओं में विभक्त होकर बह रही हैं, उस सप्तर्षि के क्षेत्र में ही वे लोग पहुँचे हैं। मृत्यु के समय कुटुंबियों एवं मित्रों के संग एवं आसक्ति का त्याग करना ही श्रेयस्कर है, इसीलिए वे चुपचाप चले गये हैं। तुम उनका पीछा न करना और उनके मार्ग में तुम अवरोध न बनना। इस मोहपाश को तुम भी काटो और उनको भी मोहपाश काटने में सहयोग दो। अतः तुम यहीं रहो।''

नारदजी भगवान् का संकल्प हैं। नारदजी महात्मा हैं। जो परमात्मा से मिलाने की बात करें, जो परमात्मा के रास्ते आनेवाले विघ्नों को हटाने का मार्ग बता दें, वे महात्मा हैं।

शुकदेवजी महाराज कहते हैं :

एतावान्सांख्ययोगाभ्यां सर्वधर्मपरिनिष्ठया।
जन्मलाभ ततः पुंसां अन्ते नारायणस्मृतिः ॥

'मनुष्य जन्म का इतना ही लाभ है कि चाहे कैसे भी हो- ज्ञान से, भक्ति से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से, जीवन को ऐसा बना लिया जाये कि मृत्यु के समय भगवान श्रीहरि की स्मृति बनी रहे।''

नारदजी आगे कहते हैं : ''हे युधिष्ठिर ! धृतराष्ट्र अपने तन की आसक्ति एवं मन के संबंधों को समेटकर सच्चे संबंधी परमात्मा तक की यात्रा करने गये हैं। तीन दिन में एक बार भोजन करते हैं और कहीं आपस में बातें करने में समय नष्ट न हो जाये, इसलिए मुँह में गंगाजी का छोटा-सा पत्थर रख लिया है। गांधारी भी व्रत-उपवास का अवलंबन लेती हैं। कुन्ती भी अपना समय दोनों की सेवा और साधना में बिताती हैं। धृतराष्ट्र ने अपना अंतिम समय सार्थक कर लिया, अतः तुम शोक न करो।''

विदुरजी के कुछ वचनों को सुनकर ही धृतराष्ट्र ने अपना अंतिम समय सँवार लिया। इसी प्रकार तुम भी संतों के वचनों को सुनकर अपना जीवन सार्थक कर लो तो कितना अच्छा !

योग के लिए श्रेष्ठ एकान्त स्थान गुरु का निवास-स्थान है। अगर शिष्य के साथ गुरु रहते नहीं हों तो ऐसा एकान्त सच्चा एकान्त नहीं है। ऐसा एकान्त काम और तमस् का आश्रयस्थान बन जाता है।

- स्वामी शिवानन्दजी

श्रीमद् भगवद्गीता : एक परिचय

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

परमात्मा अनादि और अनंत है। सनातन धर्म के ऋषि-मुनियों ने वेदों, उपनिषदों और पुराणों में उस अनादि-अनंत परमात्मा के ज्ञान का, उसके स्वरूप का और उसकी लीलाओं का विस्तार से वर्णन किया है। आर्षदृष्टा भगवान वेदव्यासजी ने अपने ग्रंथों में सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ 'श्रीमहाभारत' की रचना की, जिसे 'पंचमवेद' कहा जाता है। उसमें तरह-तरह के उपदेश दिये गये हैं। उनका सारभूत रहस्य जिस ग्रंथ में दिया गया है- वह है श्रीमद् भगवद्गीता। समग्र महाभारत का नवनीत श्रीमद् भगवद्गीता में है।

शास्त्र में आया है :

ॐ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम्।
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनी-
मम्ब त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम् ॥

'ॐ भगवान् नारायण द्वारा अर्जुन को उपदिष्ट की हुई, प्राचीन महामुनि वेदव्यासजी द्वारा महाभारत के मध्य में गुँथी हुई, अद्वैत ज्ञानामृत बरसानेवाली, अठारह अध्यायवाली, भवरोग को टालनेवाली, ऐश्वर्ययुक्त देवी हे भगवद्गीता ! हे माता ! मैं तेरा सतत अनुसंधान करता हूँ।'

'श्रीमद् भगवद्गीता' के अठारह अध्याय हैं और उनमें कुल मिलाकर ७०० श्लोक हैं।

इसमें पहला अध्याय है **अर्जुनविषादयोग** । अर्जुन ने महाभारत के युद्ध के मैदान में जब अपने सगे-संबंधियों को देखा तो 'उनके साथ युद्ध करना पड़ेगा और युद्ध में वे मारे जायेंगे' - ऐसा सोचकर वह खिन्न हो गया। उसका मन विषाद से इतना भर गया कि वह धनुष-बाण छोड़कर रथ पर बैठ गया।

जीवन में विषाद तो हर किसीको आता है लेकिन उस विषाद को अगर भगवान के सामने रखो, भगवान के आगे अपनी व्यथा प्रकट करो तो, आपका विषाद भी योग बन जाएगा।

जैसे अर्जुन ने श्रीकृष्ण के आगे अपनी व्यथा प्रकट कर दी कि 'युद्ध के लिये तैयार खड़े हुए स्वजनों को मारकर पाया हुआ राज्य मुझे नहीं चाहिए। मैं ऐसा पापकर्म नहीं करूँगा। इससे तो अच्छा यह होगा कि मुझ शस्त्ररहित को कौरव रण में मार दें।'

लेकिन श्रीकृष्ण ने देखा कि स्वजनों के मोह के कारण यह ऐसी कायरतापूर्ण बातें कर रहा है। तब दूसरे अध्याय में उन्होंने अर्जुन को हृदय की दुर्बलता का त्याग करके युद्ध के लिए तैयार हो जाने का उपदेश दिया। यह दूसरा अध्याय **सांख्ययोग** है, ज्ञानयोग है।

संसार में रहकर ईंट, चूना, लोहे-लक्कड़ का ज्ञान तो हर कोई पा लेता है। लेकिन यहाँ भगवान वह ज्ञान पाने को नहीं कह रहे हैं। यहाँ तो वे भगवत्तत्त्व संबंधी ज्ञान की बात कर रहे हैं। देह की नश्वरता और आत्मा की अमरता का ज्ञान पाने की बात कर रहे हैं। स्वधर्म का आचरण कैसे किया जाय, यह समझा रहे हैं। भगवान अर्जुन से कह रहे हैं :

''जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित है और आत्मा तो न कभी जन्मता है, न मरता है। फिर शोक किसका करना ? अगर स्वधर्म को नहीं निभायेगा यानी सहज कर्त्तव्य कर्म को नहीं करेगा, क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध नहीं करेगा तो तेरी अपकीर्ति होगी जो तेरे लिए मरण से भी बढ़कर दुःखदायी होगी।''

इसलिए हरेक मनुष्य को संस्कारप्राप्त सहज कर्त्तव्यकर्म को करते-करते अमर आत्मा का ज्ञान पा लेना चाहिए। फल की आशा छोड़कर अपने कर्त्तव्यकर्म को उत्तम रीति से करनेवाला पुरुष स्थितप्रज्ञ (स्थिर बुद्धिवाला) हो जाता है। समय पाकर वह जन्म-मरणरूप बन्धन से मुक्त होकर

परमपद को प्राप्त हो जाता है।

तीसरा अध्याय **कर्मयोग** है। कर्म तो सब करते हैं लेकिन वे कर्म करके बंधन बनाते हैं। कोई विरला गुरुमुख कर्म को योग बना लेता है। कर्म के ऐहिक फल का त्याग करके कर्मयोगी अनंतगुना फल पा लेता है। जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है : ''मुझ अंतर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त के द्वारा संपूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध कर।''

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग नाम के चौथे अध्याय में भगवान कहते हैं : ''बहुत काल से लुप्तप्राय हुए इस अविनाशी योग को मैंने सूर्य से कहा था।''

तब आश्चर्य प्रकट करते हुए अर्जुन ने कहा : ''आपका जन्म अर्वाचीन है और सूर्य तो प्राचीन है, फिर आपने सूर्य से अविनाशी योग कैसे कहा ?''

श्रीकृष्ण कहते हैं : ''जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब मैं अपनी योगमाया से, अपने अविनाशी स्वरूप को साकार रूप में प्रकट करने की शक्ति से साकार रूप में प्रकट होता हूँ। मेरे बहुत अवतार हो चुके हैं एवं तुम्हारे भी बहुत जन्म हो चुके हैं। मैं उन सबको जानता हूँ, तुम नहीं जानते।

स्वधर्म का पालन करते रहना ठीक है, पर उसके साथ चित्तशुद्धि भी जरूरी है। कर्म करें लेकिन वह कर्म पूरे मनोयोग से करें तो वह कर्म विकर्म बन जाएगा, विशेष कर्म बन जाएगा।

कर्म की गति गहन है, इसलिए कर्म के तत्त्व को भली-भाँति समझकर कर्मबन्धन से मुक्त हो जाना ही बुद्धिमानी है। आसक्तिरहित होकर कर्म करनेवाले के यज्ञरूप कर्म विलीन हो जाते हैं।''

सर्व प्रकार के यज्ञों में ज्ञानयज्ञ की श्रेष्ठता बताते हुए भगवान कहते हैं :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

''उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ। उनको भली-भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भली-भाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

यह उस ज्ञान की बात है, जिसके समान इस संसार में पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है। इस ज्ञान का आश्रय लेकर विवेकरूपी तलवार से अपने हृदय में स्थित अज्ञानजनित संशय का छेदन करके समत्वरूप कर्मयोग करता हुआ युद्ध के लिये खड़ा हो जा।''

यह संसार भी युद्ध का मैदान है। इसमें जो ज्ञान का आश्रय लेकर बाहर-भीतर के शत्रुओं से युद्ध करेगा, वह सफल हो जाएगा।

कर्मसंन्यासयोग नाम के पाँचवें अध्याय में सांख्ययोग और कर्मयोग का निर्णय है। सांख्ययोगी और कर्मयोगी का व्यवहार बाह्य रूप से भले अलग दिखाई पड़ता हो, किन्तु अंत में तो दोनों सच्चिदानंद परमात्मा के ज्ञान, आनंद और शांतिरूपी एक ही लक्ष्य को प्राप्त होते हैं।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।

जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फलरूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है। मनुष्य के शुभाशुभ कर्मों के फल को सर्वव्यापी परमेश्वर ग्रहण भी नहीं करता, त्याग भी नहीं करता परंतु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढँका हुआ है, उसीसे सब मनुष्य मोहित हो रहे हैं। लेकिन जिस मनुष्य ने परमात्मा के तत्त्वज्ञान द्वारा अपना अज्ञान नष्ट किया है, वह मुक्त है।

छट्ठा अध्याय है **आत्मसंयमयोग**।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥

जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि का त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करनेवाला योगी नहीं है।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते॥

'योग में आरूढ होने की इच्छावाले मननशील पुरुष के लिये योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से

कर्म करना ही हेतु कहा है और योगारूढ हो जाने पर सर्वसंकल्पों का अभाव ही कल्याण में हेतु कहा है।'

भगवान कहते हैं : ''हे अर्जुन ! जो कामनारहित होकर सत्कर्म करता है वह संन्यासी है, वह योगी है।''

निष्काम कर्म तो करने चाहिए लेकिन कर्मों से समय बचाकर फिर अन्तरात्मा में डूबने का, अंतर्मुख होने का अभ्यास भी करना चाहिए।

भगवान कहते हैं :

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

'संसार-समुद्र से अपने द्वारा अपना उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि मनुष्य आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

इस तरह आत्मसंयमयोग में आत्मोद्धार की प्रेरणा दी है। इसमें भगवद्प्राप्त महापुरुषों के लक्षण दिये गये हैं। ध्यानयोग की समझ और महत्त्व बताकर योगी की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहा है कि तपस्वी, ज्ञानी और विद्वानों से भी योगी श्रेष्ठ है।

तस्माद्योगी भवार्जुन ।

सातवाँ अध्याय **ज्ञानविज्ञानयोग** है।

विज्ञानसहित ज्ञान का विषय और संपूर्ण पदार्थों में कारणरूप व्यापक भगवान का वर्णन करते हुए कहा है :

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

'हे धनंजय ! मेरे सिवाय किंचित्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत् सूत्र में पिरोये गये सूत्र के मणियों के सदृश मेरे में गुँथा हुआ है।'

भगवान कहते हैं कि माया में फँसे हुए मूढ़ जन मेरे उस सर्वव्यापक रूप को नहीं जानते हैं, लेकिन जो पुरुष मेरी शरण में आता है, निरन्तर मेरेको ही भजता है, वह संसार से तर जाता है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

ऐसा सुगम उपाय होने पर भी माया द्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए तथा मनुष्यों में नीच और दूषित कर्म करनेवाले मूढ़ लोग मेरेको नहीं भजते हैं।

इस प्रकार यहाँ आसुरी भाव को प्राप्त हुए पुरुष की निंदा और भगवद्भक्तों की प्रशंसा की गई है। देवताओं की उपासना और उससे प्राप्त होनेवाले फल नाशवान हैं। अतः उसमें लगे हुए पुरुष भगवद्भक्ति से होनेवाले विशुद्ध आनंद के लाभ से वंचित रह जाते हैं।

आठवाँ अध्याय है **अक्षरब्रह्मयोग**। इस जगत् की सब चीजें तो क्षर हैं किन्तु ब्रह्म-परमात्मा अक्षर है, अविनाशी है। यह बताते हुए यहाँ ब्रह्म, अध्यात्म और कर्म के विषय में प्रश्नोत्तर किये गये हैं। शुक्ल और कृष्ण पक्ष में जीव की गति का वर्णन आता है।

इसमें यह सिद्धांत पेश किया गया है कि जो विचार मृत्यु के समय स्पष्ट और गहराई से उठा हुआ हो, वही विचार आगे के जन्म में सबसे बलवान साबित होता है। इस जन्म में पायी हुई धरोहर बाँधकर मरण की लम्बी नींद से उठकर फिर से दूसरे जन्म में अपनी यात्रा शुरू होती है। इस जन्म का अंत अगले जन्म की शुरुआत होती है। इसलिए हमेशा मरण का स्मरण रखकर जीवन का व्यवहार चलाओ। और सब तो अनिश्चित है लेकिन मरण निश्चित है। सूर्य अस्त होता है और आयुष्य क्षीण होता जाता है। एक-एक दिन करके आयु खत्म होती जाती है लेकिन मनुष्य को उसका विचार नहीं आता है।

भगवान कहते हैं : ''हे अर्जुन ! तू सब काल में समत्वबुद्धिरूप योग से युक्त हो अर्थात् निरन्तर मेरी प्राप्ति के लिये साधन करनेवाला हो।''

नौवाँ अध्याय है **राजविद्याराजगुह्ययोग**। इसमें भगवान कहते हैं :

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

यह राजविद्या है। दुनियाँ की सारी विद्याएँ अच्छी हैं, अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं लेकिन आत्मविद्या सब विद्याओं में राजा है। नीतियों में राजनीति और विद्याओं में ब्रह्मविद्या राजा है। राजनीति कोई बुरी चीज नहीं है लेकिन राजनीति में जब दुष्ट लोग घुस जाते हैं, स्वार्थ बढ़ जाता है तो कुर्सीनीति बन जाती है, घृणास्पद बन जाती है। राजा अगर धर्म को और समाज के हित को ध्यान में रखकर राज्य चलाता है तो राजनीति सही है, नहीं

तो फिर वह कुर्सीनीति हो जाती है। अगर राजनीति सही है तो समाज का कल्याण होने में देर नहीं होती, समाज के लोगों के जीवन में उसका असर देखने को मिल सकता है। वैसे ही यह राजविद्या भी गुह्य विद्या है, पवित्र है, प्रत्यक्ष फल देनेवाली है और पाने में सरल है।

हँसिबो खेलिबो धरिबो ध्यान।
अहर्निश कथिबो ब्रह्मज्ञान ॥
खावे पीवे न करे मनभंगा।
कहे नाथ मैं तिसके संगा ॥

जो कुछ करें वह उस सर्वव्यापक परमेश्वर को भक्तिभावपूर्वक अर्पण करके परमेश्वरमय हो जायें। उसीको प्राप्त करने की बात भगवान श्रीकृष्ण कह रहे हैं।

दसवाँ अध्याय है **विभूतियोग**।

भगवान की महिमा का थोड़ा-बहुत ख्याल जीव को आये, इसलिए भगवान ने इसमें अपने प्रभाव को बताते हुए कहा है कि : ''हे अर्जुन ! यहाँ बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है ? मैं इस संपूर्ण जगत को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ। इसलिए मेरेको तत्त्व से जानना चाहिए।''

ग्यारहवाँ अध्याय **विश्वरूपदर्शनयोग** है। भगवान के विश्वरूप का दर्शन करने की इच्छा रखनेवाले अर्जुन को भगवान ने दिव्य चक्षु प्रदान किये। उन दिव्य चक्षुओं से भगवान को असंख्य हाथ-मुख-नेत्रवाले और अनंत रूपवाले देखकर अर्जुन को आश्चर्य और रोमांच के साथ कुछ भय भी हुआ। तब श्रीकृष्ण ने अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन कराके अपने सौम्यरूप को पुनः धारण किया और अनन्य भक्ति से उसे प्राप्त करने की बात बताई।

भक्तियोग नामक बारहवें अध्याय में सगुण और निर्गुण भक्ति की महिमा और भक्त के प्रति भगवान की प्रीति का वर्णन है।

तेरहवाँ अध्याय **क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग** है। इसमें शरीर तो क्षेत्र है और उस क्षेत्र को जाननेवाला क्षेत्रज्ञ आत्मा है। यह शरीर, यह अंतःकरण, यह संसार क्षेत्र है, उसे जाननेवाला साक्षी चैतन्य आत्मा है और वह क्षेत्रज्ञ है। तो तुम शरीर या प्रकृति का अंतःकरण नहीं, पर उसे जाननेवाले हो।

गुणत्रयविभागयोग नाम के चौदहवें अध्याय में प्रकृति के तीन गुणों का वर्णन है : सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन तीनों गुणों का प्रमाण जैसा कम-ज्यादा होता है, वैसा जीवन का व्यवहार होता है। आदमी कभी सज्जन लगता है, कभी स्वार्थी लगता है और कभी दुष्ट लगता है। जिस वक्त जिस गुण का प्रभाव ज्यादा होता है वैसा वह लगता है। वास्तव में, प्रकृति के गुणों का जो आधार है वह आत्मा तो वैसे-का-वैसा, अचल, अविकारी रहता है। लेकिन आदमी शरीर और मन के साथ एक होकर गुणों के प्रभाव में आकर अपने को वैसा मान लेता है। अपने अविनाशी स्वरूप को जानना है, आत्मा का ज्ञान पाना है तो सत्त्वगुण बढ़ाना चाहिए। सात्त्विक वातावरण, सात्त्विक आहार-विहार और सात्त्विक संग से सत्त्वगुण बढ़ता है। **सत्त्वात्संजायते ज्ञानं...** सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है।

पंद्रहवाँ अध्याय है **पुरुषोत्तमयोग**। पुरुषों में जो उत्तम है उस सच्चिदानंद चैतन्य परमात्मा का ज्ञान देनेवाला यह अध्याय है। भगवान कहते हैं :

गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

'... जो मूढ़ नहीं हैं, वे अव्यय पद को प्राप्त होते हैं।'

वह अव्यय पद कैसा है ?

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

उस स्वयंप्रकाशस्वरूप परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है और जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य फिर संसार में वापस नहीं आते हैं, वही मेरा परम धाम है।

दैवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय में दैवी संपदा और आसुरी संपदा प्राप्त किये हुए लोगों का वर्णन है।

श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती है, यह बात **श्रद्धात्रयविभागयोग** नाम के सत्रहवें अध्याय में आता है। तामसी श्रद्धावाले अपना उल्लू सीधा करने के लिये भूत-भैरव को रिझाते हैं। वे गधे के पूँछ के बाल

और ऊँट के दाँतों की मणियों की माला बनाकर मुर्दे पर बैठकर तांत्रिक साधना करते हैं और भूत- भैरव या कर्णपिशाचिनी आदि साधते हैं, जिससे उन्हें कुछ ऐहिक चुटकुले प्राप्त हो जाते हैं । जो देवताओं को रिझाकर यहाँ भी और स्वर्गादि में भी सुख पाना चाहते हैं उनकी श्रद्धा राजसी श्रद्धा है। किन्तु आत्मदेव सब देवों का देव है, परमात्मदेव है। उसे जानने के लिये, उसे पाने के लिये जो लगा रहता है, जो यहाँ के सुख की या स्वर्ग के सुखों की भी परवाह नहीं करता है, जो मानता है कि 'मेरा आत्मा सुखस्वरूप है... मैं सुखस्वरूप आत्मा हूँ... मुझे अपने इस सोऽहं स्वरूप का साक्षात्कार करना है...' उसकी श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा है। ऐसे लोग जीवन्मुक्ति के पद को पा लेते हैं। सात्त्विक श्रद्धावाला कभी फरियाद नहीं करता, राजसी श्रद्धावाला मनुष्य फरियाद करता रहता है और तामसी श्रद्धावाला तो विरोधी हो जाता है।

श्रीमद् भगवद्गीता का अठारहवाँ और आखिरी अध्याय है **मोक्षसंन्यासयोग** ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'सर्व धर्मों को यानी सर्व कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानंदघन वासुदेव परमात्मा की अनन्य शरण को प्राप्त हो । मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।'

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण शरणागत भक्त के प्रति अपनी भक्तवत्सलता बताते हुए अभय वचन देते हैं । भक्त और भगवान की महिमा लाबयान है।

श्रीमद् भागवत परमहंससंहिता है । जीते-जी भक्ति और मरने के बाद मुक्ति चाहिए तो श्रीमद् भागवत की कथा है। संसार में रहते हुए, जीवन में आनेवाले विघ्न-बाधाओं से जूझते हुए भी परमपद को, परम सुख को पाना है, जीते-जी मुक्ति पाना है तो श्रीमद् भगवद्गीता का ज्ञान है जिसे पाकर आप तो मुक्ति का अनुभव कर ही सकते हैं, औरों को भी इस परम सुख के मार्ग पर ले जा सकते हैं।

ॐ शांति... ॐ आनन्द... ॐ... ॐ... ॐ...

*

ध्यान में पूज्य गुरुदेव का संकेत

भगवान हमें प्रेरणा और उत्साह देते हैं । उन भगवान से प्रार्थना करें कि वे हमारे दिल में शीघ्र ही ज्ञान-पिपासा पैदा करें, हमारा साहस बढ़ायें। जीवन की शाम हो जाय, उससे पहले जीवनदाता प्रभु से हमारी मुलाकात हो जाए।

सच्चे हृदय से प्रार्थना करोगे तो आपका मन पवित्र होता जाएगा, रक्त का कण-कण पवित्र होता जाएगा और भगवदीय धर्म पाने की बुद्धि बनती जाएगी। जो कुछ सत्कर्म एवं दान-पुण्य करो, सब भगवान को अर्पण करो तो उसका फल अनन्त हो जाएगा। अहंकार के कारण मन-बुद्धि को अपना मानकर जीव परेशानी पैदा करता है । उस मन-बुद्धि को भी परमात्मा को अर्पण कर दो । सत्संग और हरिकीर्तन से आपका अंतःकरण शुद्ध होता है, हृदय पावन होता है और हृदय में भक्तिभाव अठखेलियाँ करता है।

आपके संस्कार मुझे अच्छे लग रहे हैं। भगवान करें कि आपको बार-बार सत्संग सुनने का अवसर प्राप्त हो और आपका भक्तिभाव सदैव बढ़ता रहे। जो घड़ियाँ सत्संग में बीतीं, वे ही सफल हैं । आप सत्संग सुनें और याद न भी रहे फिर भी वह कितना लाभदायी है, यह तो भगवान जानते हैं। अकेले में मन को बाँध रखना संभव नहीं । जितनी देर आप सत्संग में बैठते हो, उतनी देर के लिए तो आप संतसभा में संतत्व को उपलब्ध हो जाते हो। सत्संग

की महिमा आप प्रत्यक्ष देख सकते हो कि जब तक सत्संग में बैठते हो तब तक वाणी का, विकारों का संयम अपने-आप हो जाता है। काम, क्रोध, भय, शोक, लोभ अपने-आप चले जाते हैं।

राजा जनक सत्संग सुनते थे तो उनकी सातवीं पीढ़ी के राजा अज की मुक्ति हुई। कुल में कोई बेटा ब्रह्मज्ञानी संत का सत्संग सुनता है, ईमानदारी से भक्ति करता है तो उसके पितरों का कल्याण होता है। उसके पुत्र-पौत्रों का कल्याण हो जाता है तो फिर उसके अपने कल्याण होने में क्या संदेह ? इसे आप समझ नहीं सकते, पर आपने बहुत कमाई की है।

'सूरज ढलता है तो पक्षी अपने घोंसले की ओर जाते हैं, वैसे ही प्रभु ! तू मुझे वह पंख देना कि जीवन की शाम होने से पहले मैं तेरी ओर उड़ान भर सकूँ, ऐसी मेरी मनोबुद्धि हो जाये। किसीने हीरे-मोती कमाये, कोई जवाहरात कमाएगा लेकिन मैं तो तेरे नाम की कमाई कर लूँ, ऐसी दया करना प्रभु !' यह प्रार्थना तुम करते रहना।

तुम सुबह उठो तो भगवान से कहो कि : 'प्रभु ! मैं तेरा हूँ। मेरे मन-बुद्धि भी तेरे हैं। तू इसे अच्छे रास्ते पर चलाना।'

रात को सोते वक्त परमात्मा का चिंतन करते-करते सो जायें। भोजन करें तो भी अंतर्यामी परमात्मा को भोग लगाकर ही करें। समय निकालकर 'ईश्वर की ओर' पुस्तक बार-बार पढ़ते रहें और विचार करें। ज्यादा समय निकाल सकें तो एक या दो सप्ताह मौनमंदिर में एकांत में जायें और अंतर की यात्रा करें। इससे शरीर के रोग तो मिटते हैं, मन के रोग भी मिटते हैं। ध्यान योग साधना शिविर में जाने का लाभ ले सकें तो समय निकालकर अवश्य लें। रात्रि को सोते समय भी थोड़ा-सा ध्यान करके सोवें।

साधक आत्मा में विश्रांति पाता है तो गुरु की प्रेमपूर्ण कृपा उस पर बरसती है। गुरु उसको गुप्त बातें बताते हैं। गुप्त बातें भी दो प्रकार की होती हैं : एक तो वे जो अपने जीवन में अनुभव हुए हों। जैसे कि 'मुझे ऐसा प्रकाश हुआ... ऐसे देवदर्शन हुए... मुझे मेरे गुरु ने ऐसा डाँटा था... मेरे गुरु ने ऐसी कृपा की थी... मैं ऐसे-ऐसे विकारों में गिरा था... मैं ऐसे विकारों से ऐसे बचा था... मेरे पास ऐसी-ऐसी सिद्धियाँ आई थीं... ऐसे-ऐसे चमत्कार हुए थे... किन्तु चमत्कार प्रकृति में होते हैं अतः मेरे गुरुदेव ने मुझे प्रकृति से परे जाने की प्रेरणा की थी।' आदि-आदि। गुरु लोग इस प्रकार के अनुभव और आपबीती बताते हैं। दूसरी बात, वे अपना वास्तविक स्वरूप, जो आपबीती से परे है, ब्रह्मांड से भी परे है, उस तत्त्व की बात बताते हैं। गुरु बताते हैं :

''वत्स ! जो मैं देहरूप होकर दिख रहा हूँ, वह मैं नहीं हूँ। यह एक देह, नात-जात या मत-पंथ मेरा नहीं है। जो दिख रहा हूँ, वैसा मैं नहीं हूँ। किसी देश में या प्रांत में या किसी काल में या किसी रूप में जैसा दिखता हूँ, वैसा मैं नहीं हूँ। तू ईश्वर के नाते मुझे मिला और मैं तुझे ईश्वर से मिलाने के लिये मिला। तेरा और मेरा मधुर संबंध है। हे वत्स ! प्यार से भरी तेरी आँखें और श्रद्धा की धाराएँ मुझे प्रेमवश करती हैं। तूने बार-बार श्रद्धा-भक्ति से मुझे देखा है। इसलिये हे वत्स ! मैं तुझे अपना अनुभव कहता हूँ। तू ध्यान से सुन। मेरे हृदय को छूकर निकलती हुई वाणी तेरे हृदय को पावन करती है। तेरे प्रेम की धारा मेरे अनुभव को खींचती है और मेरे प्रेम की नजर तेरे पर बरसती है।

जैसे पक्षी को फँसाने के लिये शिकारी जाल बिछाते हैं वैसे मैंने उपदेश देने के लिये वाणीरूपी जाल बिछाकर तेरे कानों को अपनी तरफ खींचा और तू इससे सहमत हुआ। इसलिए मैं तुझे अपनी ओर खींचता हूँ। तू प्रतीति में मत जाना, निज प्राप्ति में आना। तुझे इस आकृति में मैं दिख रहा हूँ, इतना ही मैं नहीं हूँ। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ से तू मुझसे बाहर निकल सके। ऐसा कोई समय नहीं, जब मैं नहीं हूँ। ऐसा कोई कर्म नहीं जो तू मुझसे छिपा सके। तत्त्व से तू मेरा अनुभव करे तो तू मुझमें ही रहता है, मुझमें ही बोलता है। मैं तुझे यह गोपनीय बात बता रहा हूँ।''

गुरु ने अपने श्रीमुख से कहा : ''देह की आकृति से मैं लेता-देता, कहता-सुनता दिखता हूँ, इतना मैं नहीं हूँ। तू देह में बँधा है, इसलिये देह में रहकर तुझे जगाना होता है।''

श्रीमद् राजचंद्र ने ठीक कहा है :

देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत ।
ते ज्ञानीना चरणमां हो वंदन अगणीत ॥

''हे वत्स ! तू देह को 'मैं' मत मानना। यह देह तो प्रतीति मात्र है। तू अपने स्वरूप की प्राप्ति करने आया है। जब तक तू लक्ष्य को नहीं पाएगा, मैं तेरा पीछा नहीं छोड़ूँगा। मेरे दिल में तेरे कल्याण के सिवाय और कुछ नहीं है। हे साधक ! कई बार तू गलती करता है, फिर प्रायश्चित करता है, रोता है, पुकारता है। कई बार मेरे से दूर होकर विकारों में जाता है, लेकिन मैं तेरे से दूर नहीं हो सकता हूँ। मैं तेरी कमजोरियाँ जानता हूँ। तेरी मनमानियाँ भी जानता हूँ। संसार में तू संभल-संभलकर कदम रखना। तू कहीं भी रहे लेकिन मुझमें रहना। जैसे श्रीकृष्ण और उद्धव का मिलन हुआ था, जैसे श्रीकृष्ण और अर्जुन का मिलन हुआ था, जैसे अष्टावक्र और जनक का मिलन हुआ था वैसे ही तेरा और मेरा मिलन हो जाये, साक्षात्कार हो जाये, यही उद्देश्य बनाए रखना। हे साधक ! तेरा और मेरा बाहर का मिलन हो, ऐसा मिलन नहीं। तू अपने को देह मानता है। देह तो आती-जाती है और तू मुझे भी आता-जाता मानता है।

बाहर के ये संबंध तो मिटनेवाले हैं लेकिन हे वत्स ! तेरा और मेरा संबंध अमिट है। आत्मा और परमात्मा का संबंध, भगवान और भक्त का संबंध तथा गुरु और शिष्य का संबंध सत्य है, अमिट है। जितना तू सत्य में ठहरता जाएगा, उतना ही तू मुझसे एक होता जाएगा।''

गुरु ने अपने सिद्धावस्था के अनुभव सुनने की इच्छा शिष्य में देखी तब अपने दृष्टिपात से, अपनी नूरानी निगाहों से स्नान कराके अपने शिष्य को कहा :

''हे वत्स ! कई बार तूने मुझे श्रद्धा-भक्ति से निहारा है। मैंने भी तुझ पर आत्मप्रेम न्यौछावर किया है।''

शिष्य ने गुरुदेव से कहा : ''गुरुदेव ! आपका प्रेम माँ की तरह ममता से पूर्ण और उन्मुख करनेवाला है। संसारियों के प्रेम से आपका प्रेम निराला है, बेजोड़ है। प्रभु ! मैं बार-बार इन मलिन हाथों से आपके प्रेम को बिखेरता जाता हूँ, फिर भी आप नाराज नहीं होते हो। कभी नाराज हुए दिखते हो तो भी हमें बचाने के लिये संकेत करते हो।''

शिष्य की योग्यता का परिचय पाकर गुरु ने दोहराया : ''पुत्र कुपुत्र हो सकता है किन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती।

वत्स ! तुम जहाँ भी जाओगे, वहाँ तुम्हें कई प्रलोभन मिलेंगे। तुम्हारी और हमारी प्रेमसगाई में विघ्न डालनेवाले कई लोग होंगे, कई बाधाएँ आयेंगी। उन बाधाओं को चीरते-चीरते तुम उस प्रेमास्पद की प्रेमभरी यादों में सराबोर रहना। वत्स ! प्रेम की पराकाष्ठा ही परमात्मा का साक्षात्कार है। तू अपने परमात्मपद को संभालना। कभी तुझे मान-बड़ाई घेर लेंगे और कभी तू विकारों में गिरेगा। यदि तू विकारों से सफलतापूर्वक बच निकला तो तुझे पुजवाने की इच्छा होगी और तेरी वह इच्छा बनी रहेगी तो मुझे उससे दुःख होगा कि तू पूज्यपद में पहुँचे बिना ही पुजवाने की इच्छा करता है। पुजवाने की इच्छा परमपद में पहुँचने में बाधक है। वत्स ! जब तक तू पूज्यपद में नहीं ठहरा तब तक मेरा प्रयत्न बंद नहीं होगा, मुझे चैन नहीं मिलेगा। मेरे चैन के खातिर साधना करते रहना, श्रद्धा-भक्ति बढ़ाते रहना। साधना छोड़ना मत। साधना छोड़ेगा तो विकार और अहंकार तुझे धोखा देंगे। तू मेरे हाथों की कठपुतली बनकर रहना। तू गुरु के दैवी कार्यों में लगे रहना, ताकि विकारी कार्य तुझे बरबाद न करें। तू मेरे प्रेम-दरवाजे पर खड़े रहना, ताकि काम का दरवाजा तेरे लिये आकर्षक न बने। तू राम के दरवाजे पर ही डटे रहना क्योंकि,

जहाँ राम तहँ नहीं काम।
जहाँ काम तहँ नहीं राम॥

जब-जब तुझे काम सताये तब-तब तू अपने राम को पुकारना। उस स्थान को तुरंत छोड़ देना।

वत्स ! मैं तेरी कमजोरियाँ जानता हूँ। तेरी संभावना भी जानता हूँ। तेरे अंदर छिपा हुआ देवत्व मुझे प्रतीत हो रहा है । मैं तेरी पुरानी निर्बलता भी जानता हूँ और जब तेरी पुरानी आदतों की ओर देखता हूँ तो मुझे नहीं होता कि तुझे विकारों में गिरानेवाली परिस्थितियों में, संसार की अग्नि में जाने की इजाजत दूँ। लेकिन तेरी प्रेमाभक्ति पर, तेरी साधना पर मुझे भरोसा है । मैं हिम्मत करता हूँ कि तू श्रद्धा बनाए रखेगा, तू साधना करता रहेगा । तू मुझसे विश्वासघात नहीं करेगा, मेरे रत्नों को नाली में नहीं डाल देगा । तुझ पर मुझे विश्वास है । इसलिये मैं तुझे संसार में जाने की इजाजत देता हूँ।

संसार में तू जाये तो संभल-संभलकर कदम रखना। संसार में उत्साह से कर्त्तव्यपालन करना। संसार का कार्य उत्साह से करना लेकिन परिणाम की चिन्ता मत करना । यदि परिणाम चाहे भी तो शाश्वत चाहना और शाश्वत परिणाम आत्म-साक्षात्कार ही है। तू अहंकार, वासना या काम की कठपुतली होकर कार्य नहीं करना, राम की कठपुतली होकर कार्य करना। तभी तू राम में विश्रांति पायेगा। जितना तू राम में विश्रांति पायेगा उतना ही मेरा चित्त प्रसन्न होगा। जब-जब विकारों का सामना हो, तब सावधान रहना। तू फिसल जाये यह दुःख की बात है, पर निराशा की बात नहीं है। तू फिर-फिर से खड़ा होना। मैं फिर से तेरा हाथ पकडूँगा। तू डरना मत। मेरा विशाल प्यार तेरे साथ है। तू मुझे इतना प्यार करता है, तो मैं कंजूस क्यों बनूँगा ? तू अपने 'मैं' को मिटाता है तो हे वत्स ! मैं अपने-आप को दे डालने का इन्तजाम करता हूँ।

मैं अपने और गुरुदेव के बीच की बातें तो कह ही देता हूँ । मैं तेरे और मेरे बीच के अनुभव का इन्तजार करता हूँ । मेरे पास आने पर तुझे जो अनुभूतियाँ हुईं, उनमें रुकना मत, आगे ही चलते रहना । मैं तुझे जितना उन्नत देखना चाहता हूँ, उसके लिये तू प्रयत्न करना। तू प्यार और उत्साह बढ़ाकर प्रयत्न करते रहना । मैं तुझे समता के सिंहासन पर बिठाना चाहता हूँ। तेरे चित्त की दशा सुख-दुःख में, मान-अपमान में, शीत-उष्ण में सम रहे, यही मेरी आकांक्षा है।

वत्स ! तू ऐसा सोचना कि : 'मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं सुख-दुःख, मान-अपमान में सम रहूँगा ? ऐसे दिन कब आयेंगे कि गुरुदेव मुझे अपने-आपका दान दे डालेंगे ? ऐसे दिन कब आयेंगे कि गुरु और शिष्य की दूरी खत्म हो जायेगी ?'

गुरु के अनुभव में शिष्य टिक जाये और शिष्य, शिष्य न रहे, पर गुरु बन जाये। वत्स, तू ऐसी ही तमन्ना करना। आत्मपद पाने का लक्ष्य बनाए रखना। अभी तो तू अज्ञान से घिरा है, प्रलोभन भी बहुत आएँगे, नासमझ लोग तुझे समझाने आएँगे, पर तू बाहर की सहायता मत लेना। क्या परमात्मा की सहायता से तेरी तृप्ति नहीं होगी ? बाहर के व्यक्ति और बाहर के कार्यों के सहारे तू अपनी यात्रा खत्म मत करना। बाहरी सहारों में उलझ मत जाना। अंतरयात्रा को भूल मत जाना।

तुझे संसार में जाने की इजाजत तो देता हूँ, पर सावधान भी करता हूँ क्योंकि मैं तुझे प्यार करता हूँ। तू अपने को कभी अकेला मत समझना, कभी अनाथ नहीं समझना । दीक्षा के दिन से तेरा-मेरा मिलन हुआ है, तबसे तू अकेला नहीं है। मैं सदा तेरे साथ हूँ। देह की दूरी चाहे दिखे, पर आत्मराज्य में दूरी की कोई गुंजाइश नहीं । आत्मराज्य में देश-काल की कोई विघ्न-बाधाएँ आ नहीं सकती । तू आत्मराज्य में प्रवेश पाता जाएगा।''

[पू. बापू की 'मत ज़ा जोगी' कैसेट में से]

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

ईश्वर की आद्यशक्ति और उसका विस्तार

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ईश्वर की जो मायाशक्ति है, उसीको आद्यशक्ति कहते हैं। उसीसे इस संपूर्ण संसार का व्यवहार चलता है। उसी शक्ति से सत्त्व, रज एवं तम- ये तीन गुण उत्पन्न हुए हैं। सत्त्वगुण के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु, रजोगुण के अधिष्ठाता भगवान् ब्रह्माजी एवं तमोगुण के अधिष्ठाता भगवान् शिव माने जाते हैं। गुरुवाणी में आता है :

एक माई जगत वियायी, तीन चेले परवान।
एक संसारी, एक भंडारी, एक देवे निर्वान ॥

ये ही तीन देव क्रमशः सृष्टि का सर्जन, पालन एवं संहार करते हैं। इन सबका जो शुद्ध-बुद्ध स्वरूप है, उसीको परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। जैसे, हजारों-हजारों लहरों का जो आधार है, उसको सागर कहते हैं वैसे ही ब्रह्म सागर है, अवतार उसमें लहरियाँ हैं और जीव हैं बुदबुदे। बाहर से लहरें एवं बुदबुदे एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न दिखते हैं, बड़े-छोटे दिखते हैं, किन्तु तत्त्व से तो दोनों एक ही हैं। इसीलिए कहा जाता है- **आत्मा सो परमात्मा।**

जो बुदबुदा है वही लहर है और जो लहर है वही बुदबुदा है। तात्त्विक दृष्टि से देखें तो लहर, लहर नहीं एवं बुदबुदा, बुदबुदा नहीं- दोनों पानी ही हैं। ऐसे ही जीव भी चेतन है और ईश्वर भी चेतन है। जो शुद्ध चेतन है, उसका नाम है ब्रह्म। मायाविशिष्ट चेतन का नाम है ईश्वर एवं अविद्याग्रसित चेतन का नाम है जीव। यदि जीव की अविद्या मिट जाये, तो उसका वास्तविक स्वरूप तो है ही ब्रह्म। जैसे-बुदबुदा अपने को पानी रूप में जान ले तो वह सागर ही है।

किन्तु जीव बेचारा माया अर्थात् अविद्या में ही जीता है और इसलिए भयभीत, दुःखी और चिंतित होता रहता है। वह धन कमाता है तब भी दुःखी होता है और नहीं कमाता है तब भी दुःखी होता है। शादी करता है तो भी दुःखी होता है और कुँवारा रहता है तो भी दुःखी होता है। यश में भी भयभीत रहता है एवं अपयश में भी भयभीत रहता है। जीव बेचारे की हालत ही ऐसी है कि वह स्वयं को सदा जोखिम में ही पड़ा महसूस करता है। उसकी ऐसी हालत होती है, अपनी बेवकूफी के कारण। नहीं तो, वह तो सदा मुक्त और निर्लेप नारायण है। यह बेवकूफी मिटती है परमात्मा के ज्ञान से और परमात्म-ज्ञान मिलता है परमात्मा की शरण जाने से, परमात्मा-प्राप्त संतों की शरण जाने से।

यह बात जानने के बावजूद भी जीव भटकता रहता है। उसका कारण क्या है ? जीव (मनुष्य) का जगत-विषयक स्पंदन।

स्पंदन दो प्रकार का होता है :

(१) ज्ञानप्रधान (२) संकल्प-विकल्पप्रधान।

ज्ञानप्रधान स्पंदनवाले जीव तो शुद्ध चैतन्य परमात्मा का चिंतन करते हैं, लेकिन संकल्प-विकल्पप्रधान स्पंदनवाले जीव जगत का चिंतन करके जगतमय ही हो जाते हैं। बार-बार जगत का चिंतन करने से उन्हें संकल्प-विकल्प की आदत पड़ जाती है और आत्मविषयक चिंतन छूट जाता है। जैसे शेर का बच्चा बाल्यकाल से बकरों के बीच रहने से अपना शेरपना भूल जाता है, वैसे ही जगत का चिंतन करते-करते जीव भी अपना वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मत्व) भूल जाता है। ऐसे ही असाधु के साथ साधु रहने लगता है तो साधु भी असाधु हो जाता है, लेकिन यदि असाधु साधु के साथ रहने लगे तो वह भी साधु होकर पूजनीय हो जाता है।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! संग

की बड़ी बलिहारी है। मिट्टी पवन का संग करती है तो गगनगामी होकर पुष्पवाटिका में पहुँच जाती है, साधुओं की जटाओं में पहुँच जाती है... यदि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के नियम को लाँघकर और ऊपर चली जाए तो फिर सदा के लिए ऊपर ही रह जाती है। किन्तु यदि वही मिट्टी पानी का संग करती है तो कीचड़ बन जाती है। मिट्टी तो एक ही है, किन्तु संग का बड़ा प्रभाव है। ऐसे ही जीव जब परमात्मा की शरण लेता है, संत-महापुरुषों का संग करता है तो देर-सबेर परमात्मामय हो जाता है। किन्तु यदि जगत के व्यक्तियों-वस्तुओं का संग करता है, नश्वर पदार्थों का संग करता है, तो नश्वरता की आदत पड़ जाती है।''

आदत भी तीन प्रकार की होती है :

(१) सात्त्विक (२) राजसिक (३) तामसिक।

सब आदतें तो गुलामी करवाती हैं लेकिन संत-महापुरुष इन तीनों आदतों से परे अपने स्वरूप में मस्त रहते हैं और वे ही पूर्ण स्वतंत्र रह पाते हैं।

ऐसे ही एक पूर्ण स्वतंत्र महापुरुष हो गये मस्तराम बाबा।

एक बार उनके चरणों में एक राजा ने आकर प्रणाम किया और कहा : ''बाबाजी ! चाचा ने खटपट करके जो राज्य मुझसे छीन लिया था, वह राज्य मुझे वापस मिल गया। चूँकि मैं आपको प्रणाम करके आपका आशीर्वाद लेकर गया था, इसलिए मुझे अपना राज्य वापस मिल गया। यह आपकी ही कृपा है।''

मस्तराम बाबा : ''अरे, बिल्कुल झूठ।''

राजा : ''नहीं, नहीं बाबाजी ! आपकी ही कृपा से राज्य मिला है।''

तब मस्तराम बाबा ने खुलासा करते हुए कहा :

''अरे, मेरी कृपा होती तो तुझे यह नश्वर राज्य तो क्या, मैं ही मिल जाता। यह तो मेरी दासी की कृपा हुई है।''

सच ही तो है। जिन्होंने आत्म-राज्य पा लिया हो, ऐसे ब्रह्मवेत्ता संतों के लिए माया दासी के समान ही होती है। ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों की मनौती मानने से, उनका दर्शन करने से और उनके आशीर्वाद लेने से यदि कोई सांसारिक सफलता मिल जाए तो यह कोई आखिरी उपलब्धि नहीं है। आखिरी उपलब्धि तो यह है कि,

जहाँ में उसने बड़ी बात कर ली।
जिसने अपनी आत्मा से मुलाकात कर ली॥

श्रीमद्भगवद्गीता के छठवें अध्याय के २२वें श्लोक में आता है :

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

'परमेश्वर की प्राप्तिरूप लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा लाभ नहीं मानता है और भगवद्-प्राप्तिरूप अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है।'

जो ऐसे संत-महापुरुषों को छोड़कर माया की शरण में जाता है, जगत की शरण में जाता है, वह फिर चाहे संसार का सारा राज्य ही क्यों न पा ले, सारे शत्रुओं पर विजय ही क्यों न पा ले अथवा सारी संपत्ति ही क्यों न पा ले, फिर भी सदा के लिए पूर्ण सुखी, पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो सकता क्योंकि काम-क्रोध आदि विकारों के प्रभाव से यह सब फीका हो जाता है अथवा तो मृत्यु का झटका एक साथ ही सब कुछ छीन लेता है और चौरासी का चक्कर शुरु हो जाता है।

माया तामसिक लोगों को पाप में, राजसी लोगों को काम एवं लोभ-मोह में तथा सात्त्विक लोगों को भजनादि में सुख दिखाती है, किंतु परमात्मा का दर्शन नहीं करने देती। परमात्म-दर्शन तो वही कर सकता है अथवा पूर्ण सुखी, पूर्ण स्वतंत्र एवं पूर्ण आनंदित तो वही हो सकता है, जो अपनी पुरानी जीवभाव की आदतों को मिटा दे, संकल्प-विकल्पों को मिटा दे, अविद्या को मिटा दे। किन्तु यह तभी संभव है जब जीव जगत का चिंतन छोड़कर परमात्म-चिंतन करने लगे, माया को छोड़कर मायाधीश की शरण में जाये, नश्वर को छोड़कर शाश्वत का मार्ग बतलानेवाले संत-महापुरुषों के चरणों का आश्रय ले ले।

ॐ शांति... ॐ आनंद... ॐ माधुर्य...
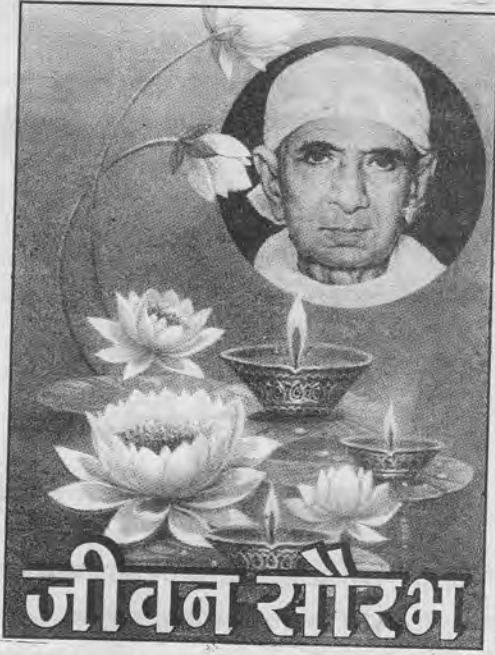
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

(गतांक का शेष)

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज की सबसे बड़ी विलक्षणता यह थी कि उनकी कथनी एवं करनी में कोई भेद न था। वे बोलते तब उनकी वाणी भीतर की गहराई में से निकलती। अतः सुननेवाले के ऊपर उनके उपदेश का गहरा प्रभाव पड़ता। वे एक विशाल वटवृक्ष की तरह थे, जिनकी छाया में हजारों लोगों ने विश्राम पाया। वे जहाँ-जहाँ पधारते, वहाँ-वहाँ जिज्ञासुओं को उपदेश देते, योग एवं आसन सिखाते, साथ-ही-साथ पाठशाला, धर्मशाला, व्यायामशाला एवं गौशाला खोलने की प्रेरणा देते। आगरा में उनकी प्रेरणा से स्थापित 'श्रीकृष्ण गौशाला' एक आदर्श गौशाला है। उसके साथ एक कुआँ, खेत, बगीचा, अतिथिगृह, सत्संग मंडप एवं पुस्तकालय भी बनाया गया है।

कानपुर में किसीने एक बड़ा मंदिर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज को अर्पित किया तो उन्होंने उसे आश्रम बनाकर ट्रस्टियों के हवाले सौंप दिया। गोधरा में भी जिज्ञासुओं के साधना करने के लिए एक आश्रम की स्थापना की।

वे कभी-भी किसी एक जगह पर स्थिर होकर नहीं बैठे। आज यहाँ तो कल वहाँ। उड़ते पक्षी की तरह घूमते ही रहे। कल वे कहाँ होंगे, यह कोई नहीं बता सकता था। भारत का कोई भी ऐसा कोना बाकी नहीं रहा होगा, जो उनकी चरणरज से पावन न हुआ हो। वे जहाँ जाते, वहाँ उपदेश देने के अलावा जिज्ञासुओं की व्यक्तिगत उन्नति में भी रुचि रखते थे। जहाँ-जहाँ जाते वहाँ-वहाँ वेद, उपनिषद्, ब्रह्मज्ञान वगैरह का उपदेश देकर आध्यात्मिकता के संस्कार सींचते थे।

उनका व्यक्तित्व ऐसा अनोखा था कि क्षणमात्र में ही वे सबको अपना बना लेते और खुद भी सबके बन जाते। उनके पास आम जनता से लेकर बड़े-बड़े संत, राजनेता, प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं उद्योगपति आते। उनके सबके साथ किये जानेवाले व्यवहार में सहिष्णुता, चित्त की सरलता, उदारता, सौम्यता, आत्मीयता, सत्यता, निर्मलता वगैरह गुण सहज ही झलक उठते।

उनके प्रत्येक क्रिया-कलापों का अवलोकन करने पर प्रतीत होता था कि उनके पास जानेवाले साधकों का दिल उनके सान्निध्य मात्र से पावन होता, चित्त की चंचलता कम होती, हृदय संतप्रेम से भर जाता।

❋

विदेशयात्रा

संतों के लिए कौन अपना और कौन पराया ? 'अपना-पराया' यह तो मानव की संकीर्ण मति की उपज है। संतों को तो **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के अनुसार पूरा विश्व ही अपना कुटुम्ब लगता है।

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज ने केवल भारतवासियों में ही धर्म, संस्कृति और सदाचार का प्रसाद बाँटकर उनको सच्चा मार्ग बताया था, ऐसी

बात नहीं है वरन् विदेशों में जाकर, गौरवमयी भारतीय संस्कृति का प्रचार करते हुए वहाँ के लोगों तक भी ऋषि-मुनियों के पावन संदेश को पहुँचाया था।

उन्होंने देखा कि व्यापार के लिए विदेशों में गए हुए हिन्दू वहीं पर बस गये हैं। वहाँ मायावाद की लहर ने उन्हें भी चपेट में ले लिया है। वे वहाँ पश्चिमी देशों के भौतिकवाद का अनुसरण करके मानव जीवन का लक्ष्य भूलते जा रहे हैं। भारत के आर्य, ऋषि-मुनियों की संतान होने के बावजूद वे अपने धर्म, उच्च संस्कार, कर्त्तव्य एवं संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। उनका रहन-सहन बदल चुका है।

वे समझते हैं कि मनुष्य जन्म खाने-पीने एवं मौज-मजा करने के लिए ही मिला है। धन इकट्ठा करना ही जीवन का लक्ष्य है। ऐसी बेजवाबदारी एवं बेपरवाही से जीवन जीते अपने देशवासियों को भौतिकवाद के चंगुल से बचाने के लिए एवं ऋषि-मुनियों के ज्ञान-संदेश को उन तक पहुँचाने के लिए पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज तत्पर हो उठे।

श्रद्धालु भक्तों के प्रेम भरे आमंत्रण को स्वीकार करके पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज पूर्व एशिया जाने के लिए तैयार हुए। उन्होंने २ जनवरी, १९६१ की रात्रि को साढ़े आठ बजे मुंबई के एयरपोर्ट से हवाई जहाज द्वारा पूर्व एशिया के लिए प्रस्थान किया। उनके एक निकटस्थ भक्त ने उनकी विदेशयात्रा का आँखों देखा वर्णन करते हुए कहा है :

''एयरपोर्ट पर असंख्य लोग उनके दर्शन एवं स्वागत के लिए फूलमालाएँ लेकर आतुर नयनों से प्रतीक्षा कर रहे थे। जिनकी उपस्थिति मात्र से संपूर्ण प्रकृति भी उल्लसित हो उठती है, ऐसे अपने प्यारे गुरुदेव के दर्शन से भक्तों के हृदय खिले बिना कैसे रहते ?

पूज्य स्वामीजी श्री लीलाशाहजी महाराज के सिंगापुर आगमन के साथ ही भक्तों की आतुरता का अंत आया।''

(क्रमशः)

संतमहिमा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुजरात में नड़ियाद के पास पेटलाद नामक ग्राम में रमणलाल नाम के एक धर्मात्मा सेठ रहते थे। वे चाहते थे कि हमारे पेटलाद में शराब की बोतलें नहीं, अपितु हरिनाम की, हरिरस की प्यालियाँ बँटे। साधु-संतों के प्रति उनका बड़ा झुकाव था।

अति पापियों को तो संत-दर्शन की रुचि भी नहीं होती। जिसके पाप नष्ट होते हैं, उसीकी श्रद्धा साधु-संतों में टिकती है। अगर कोई कुकर्म करता है तो उसके पाप जोर पकड़ते हैं एवं वह साधु-संतों का विरोधी हो जाता है।

किसी आदमी के कुल का विनाश होगा या विकास होगा- यह जानना हो तो देखो कि उस आदमी को साधु-संतों के प्रति श्रद्धा है या उनकी निंदा करता है ? उस आदमी के विचार ऊँचे हैं कि हल्के हैं ?

मुझे भविष्य में सुख मिलेगा कि दुःख - यह मैं अभी जान सकता हूँ। अगर मेरे मन में कुकर्म के विचार आ रहे हैं, परदोष-दर्शन हो रहा है, दूसरे को गिराकर, छल-कपट करके ऊँचा होना चाहता हूँ तो मेरे भविष्य में अशांति और दुःख लिखा है। अगर मैं दूसरे की भलाई चाहता हूँ, मंगल चाहता हूँ, कष्ट सहकर भी परोपकार करना चाहता हूँ तो मेरा भविष्य उज्ज्वल है।

अगर मन में बुरे विचार आते हैं तो हमारा कर्त्तव्य

है कि उन्हें काट दें। जो व्यक्ति अपने-आपको नहीं संभालता है, उसको देवता भी कब तक संभालेंगे ? भगवान् भी कब तक संभालेंगे ?

हिम्मते बंदा तो मददे खुदा ।
बेहिम्मत बंदा तो बेज़ार खुदा ॥

सत्कर्म करने में हिम्मत करनी चाहिए। मन तो धोखा देगा कि 'अपना क्या... अपना क्या ? अरे ! अपने पेट के लिए, अपने परिवार के लिए तो कुत्ता भी जी लेता है लेकिन जो रब के लिए, समाज की आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीते हैं, उनका जीवन धन्य हो जाता है।

रमणलाल ऐसे ही पुण्यात्मा सेठ थे। गाँव में साधु-संतों को बुलाकर, उनका बड़ा आदर-सत्कार करते थे। भगवत्परायण साधु-संतों को सद्गुरु मानकर उनके आश्रम में स्वयं भी यदा-कदा जाया करते एवं वहाँ जाकर चुपचाप सेवा करते थे।

संतों का हृदय ही ऐसा होता है कि वे किसीकी सेवा नहीं लेते हैं और यदि लेते भी हैं तो उसका कल्याण करने के लिए लेते हैं।

संत की महिमा वेद न जाने ।
जेता जाने तेता बखाने ॥

एक संत हजारों असंतों को संत बना सकते हैं लेकिन हजारों संसारी मिलकर भी एक संत नहीं बना सकते। संत बनना कोई मजाक की बात नहीं है। एक नेता जाता है तो उसकी कुर्सी पर दस आ जाते हैं लेकिन भारत में दस ब्रह्मज्ञानी संत इस संसार से चले गये और एक भी उनकी जगह पर नहीं आया।

एक संत कइयों की डूबती नैया को पार लगा सकते हैं, कई पापियों को पुण्यात्मा बना सकते हैं, कई अभागियों को भाग्यवान बना सकते हैं, कई नास्तिकों को आस्तिक बना सकते हैं, अभक्तों को भक्त बना सकते हैं, अशांतों को शांत बना सकते हैं और शांत में शांतानंद प्रगट कराके उसको मुक्त महात्मा बना सकते हैं।

राजा सुषेण नाव में यात्रा करते-करते कहीं जा रहे थे। मार्ग में आँधी-तूफान आने की वजह से उनकी नाव खतरे में पड़ गई, जिससे उनकी पत्नी, उनके इकलौते पुत्र, उनके स्वयं के तथा एक महात्मा के प्राण संकट में पड़ गये।

यह देखकर राजा सुषेण पुकार उठे :

''बचाओ ऽऽऽ ! और किसीको भले नहीं, लेकिन इन महात्माजी को बचा लो...''

वे एक बार भी यह नहीं बोले कि 'रानी को बचाओ... पुत्र को बचाओ... मुझे बचाओ...' नहीं नहीं। उन्होंने तो बस, रट लगा दी कि 'बाबाजी को बचाओ... बाबाजी को बचाओ...'

बड़ी मुश्किल से, दैवयोग से नाव किनारे लगी। राजा के जी-में-जी आया। किनारे पर उतरकर मल्लाह ने कहा :

''राजन् ! आपने एक बार भी नहीं कहा कि मुझे बचाओ, रानी को बचाओ, राजकुमार को बचाओ। बस, बाबाजी को बचाओ... ऐसा क्यों ?''

राजा : ''ऐसा बेटा तो दूसरा भी आ सकता है। रानियाँ भी कई आती और जाती हैं। मेरे जैसे राजा भी कई हैं। मेरे मर जाने के बाद दूसरा गद्दी पर आ जायेगा लेकिन ये हजारों के दिल की गद्दी पर दिलबर को बैठानेवाले संत बड़ी मुश्किल से आते हैं इसलिए ये बच गये तो समझो, सब बच गये। इनकी सेवा हो गयी तो समझो, सबकी सेवा हो गयी।''

सेठ रमणलाल भी इसी भाव के अनुसार अपनी संप्रत्ति को संतसेवा में लगा देते। लोग उन्हें कहते कि 'कुछ हमारा पैसा भी स्वीकार कर लें' तो वे कहते :

''अभी नहीं, भाई ! दान के पैसे हैं लोहे के चने। इसका सदुपयोग करेंगे तो कुल आबाद होगा, नहीं तो सात पीढ़ी कंगाल हो जायेगी। मुझे अभी जरूरत नहीं है। जब जरूरत होगी, तब तुमसे ले लूँगा। पहले अपना लगाऊँगा।''

दान अपने घर से शुरू होता है, सेवा अपने शरीर से शुरू होती है, भक्ति अपने मन से शुरू होती है और आत्मज्ञान अपनी सद्बुद्धि से शुरू होता है।

सत्संग सुनते-सुनते सेठ रमणलाल की बुद्धि बहुत तेजस्वी हो गयी। देखो, सत्संगी हो चाहे कुसंगी हो, अच्छा आदमी हो चाहे बुरा आदमी हो, चढ़ाव-

है कि उन्हें काट दें। जो व्यक्ति अपने-आपको नहीं संभालता है, उसको देवता भी कब तक संभालेंगे ? भगवान् भी कब तक संभालेंगे ?

हिम्मते बंदा तो मददे खुदा ।
बेहिम्मत बंदा तो बेज़ार खुदा ॥

सत्कर्म करने में हिम्मत करनी चाहिए। मन तो धोखा देगा कि 'अपना क्या... अपना क्या ? अरे ! अपने पेट के लिए, अपने परिवार के लिए तो कुत्ता भी जी लेता है लेकिन जो रब के लिए, समाज की आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीते हैं, उनका जीवन धन्य हो जाता है।

रमणलाल ऐसे ही पुण्यात्मा सेठ थे । गाँव में साधु-संतों को बुलाकर, उनका बड़ा आदर-सत्कार करते थे । भगवत्परायण साधु-संतों को सद्गुरु मानकर उनके आश्रम में स्वयं भी यदा-कदा जाया करते एवं वहाँ जाकर चुपचाप सेवा करते थे।

संतों का हृदय ही ऐसा होता है कि वे किसीकी सेवा नहीं लेते हैं और यदि लेते भी हैं तो उसका कल्याण करने के लिए लेते हैं।

संत की महिमा वेद न जाने ।
जेता जाने तेता बखाने ॥

एक संत हजारों असंतों को संत बना सकते हैं लेकिन हजारों संसारी मिलकर भी एक संत नहीं बना सकते। संत बनना कोई मजाक की बात नहीं है। एक नेता जाता है तो उसकी कुर्सी पर दस आ जाते हैं लेकिन भारत में दस ब्रह्मज्ञानी संत इस संसार से चले गये और एक भी उनकी जगह पर नहीं आया।

एक संत कइयों की डूबती नैया को पार लगा सकते हैं, कई पापियों को पुण्यात्मा बना सकते हैं, कई अभागियों को भाग्यवान बना सकते हैं, कई नास्तिकों को आस्तिक बना सकते हैं, अभक्तों को भक्त बना सकते हैं, अशांतों को शांत बना सकते हैं और शांत में शांतानंद प्रगट कराके उसको मुक्त महात्मा बना सकते हैं।

राजा सुषेण नाव में यात्रा करते-करते कहीं जा रहे थे । मार्ग में आँधी-तूफान आने की वजह से उनकी नाव खतरे में पड़ गई, जिससे उनकी पत्नी, उनके इकलौते पुत्र, उनके स्वयं के तथा एक महात्मा के प्राण संकट में पड़ गये।

यह देखकर राजा सुषेण पुकार उठे :

''बचाओ ऽऽऽ ! और किसीको भले नहीं, लेकिन इन महात्माजी को बचा लो...''

वे एक बार भी यह नहीं बोले कि 'रानी को बचाओ... पुत्र को बचाओ... मुझे बचाओ...' नहीं नहीं। उन्होंने तो बस, रट लगा दी कि 'बाबाजी को बचाओ... बाबाजी को बचाओ...'

बड़ी मुश्किल से, दैवयोग से नाव किनारे लगी। राजा के जी-में-जी आया । किनारे पर उतरकर मल्लाह ने कहा :

''राजन् ! आपने एक बार भी नहीं कहा कि मुझे बचाओ, रानी को बचाओ, राजकुमार को बचाओ। बस, बाबाजी को बचाओ... ऐसा क्यों ?''

राजा : ''ऐसा बेटा तो दूसरा भी आ सकता है। रानियाँ भी कई आती और जाती हैं। मेरे जैसे राजा भी कई हैं। मेरे मर जाने के बाद दूसरा गद्दी पर आ जायेगा लेकिन ये हजारों के दिल की गद्दी पर दिलबर को बैठानेवाले संत बड़ी मुश्किल से आते हैं इसलिए ये बच गये तो समझो, सब बच गये। इनकी सेवा हो गयी तो समझो, सबकी सेवा हो गयी।''

सेठ रमणलाल भी इसी भाव के अनुसार अपनी संपत्ति को संतसेवा में लगा देते। लोग उन्हें कहते कि 'कुछ हमारा पैसा भी स्वीकार कर लें ' तो वे कहते :

''अभी नहीं, भाई ! दान के पैसे हैं लोहे के चने । इसका सदुपयोग करेंगे तो कुल आबाद होगा, नहीं तो सात पीढ़ी कंगाल हो जायेगी। मुझे अभी जरूरत नहीं है। जब जरूरत होगी, तब तुमसे ले लूँगा। पहले अपना लगाऊँगा।''

दान अपने घर से शुरू होता है, सेवा अपने शरीर से शुरू होती है, भक्ति अपने मन से शुरू होती है और आत्मज्ञान अपनी सद्बुद्धि से शुरू होता है।

सत्संग सुनते-सुनते सेठ रमणलाल की बुद्धि बहुत तेजस्वी हो गयी। देखो, सत्संगी हो चाहे कुसंगी हो, अच्छा आदमी हो चाहे बुरा आदमी हो, चढ़ाव-

उतार के दिन तो सबके आते ही हैं। श्रीराम के भी आते हैं और रावण के भी आते हैं। तब भी श्रीराम हृदय से पवित्र रहते हैं, सुखी रहते हैं और चढ़ाव के दिन आते हैं तब भी निरहंकारी रहते हैं। जबकि पापी आदमी के चढ़ाव के दिन आते हैं तो वह घमंड में मरता है और उतार के दिन आते हैं तो विषाद में कुचला जाता है।

सन् १९५०-५२ के आसपास का समय था। सेठ रमणलाल के भी उतार के दिन आये। पेटलाद में हाहाकार मच गया कि 'इतना धर्मात्मा किन्तु दिवाला निकलने की नौबत!' सेठ रमणलाल स्वयं भी बड़े चिंतित थे। उस समय लोग कहने लगे : 'अरे! इतना बड़ा सत्संग-हॉल बनवाया, संतों की इतनी सेवा की, फिर भी उनका दिवाला निकल रहा है...!'

वास्तव में, सत्संग करने से सेठ रमणलाल का धंधा ठप्प नहीं हो रहा था, वरन् इस समय बाजार की मंदी एवं उतार का समय होने से धंधा ठप्प हो रहा था। किन्तु सत्कर्मों की वजह से ऐसी विकट परिस्थिति में भी सेठ रमणलाल में काफी समझ थी। अतः वे एक महात्मा के पास गये, जिनका नाम था नारायण मुनि। उनके पास जाकर रमणलाल ने कहा :

''महाराज! दिल खोलकर बात बताता हूँ कि नौकरों ने कुछ उल्टा-सीधा किया है, बाजार थोड़ी मंदी है और जिन लोगों ने मेरे पास 'डिपॉजिट' रखी थी, उन लोगों का विश्वास टूट गया है। सब एक साथ 'डिपॉजिट' लेने आ रहे हैं। अतः अब रातों-रात दिवाला निकलने के सिवाय़ मेरे पास कोई चारा नहीं रह गया है। फिर भी सत्संग किया है, सत्कर्म किया है इसलिए बुद्धि में यह प्रेरणा आयी है कि चलूँ, संत से कुछ मार्गदर्शन ले लूँ।''

यह सत्संग का फल है। कष्ट है, भारी कष्ट है। सात पीढ़ियों को कलंक लगे कि 'यह दिवालिया है।' और उधर परलोक में भी दुःख भोगना पड़े, ऐसा अवसर आ रहा है। फिर भी बचने की जगह पर जा रहे हैं।

नारायण मुनि ने कहा : ''जब दिवाला निकलने का तुमने सोच ही लिया है तो कुछ-न-कुछ रकम अपने हाथ में करने की योजना बनायी होगी। कोई भी आदमी दिवाला निकलने के पहले अपना कुछ-न-कुछ पैसा बचा लेता है। सच बता, तूने कितना सरकाया है?''

रमणलाल : ''महाराज! अभी थोड़ा इधर-उधर करूँगा, तो लाख-सवा लाख रूपये मेरे हाथ में आ जायेंगे।''

नारायण मुनि : ''अच्छा, तो वह सवा लाख रूपये तू मुझे दे दे। मैं उससे इधर पाठशाला खोलूँगा और तेरी रक्षा भगवान् करेंगे।''

रमणलाल : ''जो आज्ञा, महाराज!''

दिवाला निकलने में लाख-सवा लाख रूपये की रकम बचेगी, उसे भी नारायण मुनि माँग रहे हैं और रमणलाल स्वीकार कर रहे हैं... कैसी उत्तम समझ है!

नारायण मुनि ने घोषणा कर दी कि 'सेठ रमणलाल की तरफ से मैं पाठशाला बनवा रहा हूँ।'

डिपॉजिट माँगनेवालों ने सुना कि 'सेठ दिवालिया हैं और वे तो सवा लाख रूपये पाठशाला के लिए दे रहे हैं! वे दिवालिया कैसे हो सकते हैं? अरे! डिपॉजिट दें तो उन्हीं को दें।'

सारी 'डिपॉजिट' उनके पास वापस आ गयी और रमणलाल गिरते-गिरते ऐसे चढ़े कि बाद में तो उन्होंने कई सत्कर्म किये, कई भण्डारे किये और साधु-संतों की खूब सेवा की। 'रमणलाल औषधालय', 'नारायण मुनि पाठशाला' आदि आज भी उनके सत्कर्म की खबरें दे रहे हैं... आदमी चाहे छोटा हो तो भी अपने सत्कर्मों से महान् बन जाता है।

सूरत से कीरत भली बिना पाँख उड़ जाय।
सूरत तो जाती रही कीरत कबहुँ न जाय॥

शबरी भीलन को पता था क्या? धन्ना जाट को पता था क्या? बाला-मरदाना को पता था क्या कि लोग हमें याद करेंगे? नहीं। वे तो लग गये गुरु की सेवा में, बस... और ऐसा नहीं कि गुरु ने सदैव वाहवाही ही की होगी कि 'शाबाश बेटा! शाबाश।'

नहीं, कई बार डाँटा और फटकारा भी होगा।

जो वाहवाही का गुलाम होकर धर्म का काम करेगा, उसकी वाहवाही कम होगी या डाँट पड़ेगी तो वह विरोधी हो जायेगा। लेकिन जिसको वाहवाही की परवाह ही नहीं है, भगवान के लिए भगवान का काम करता है, गुरु के लिए गुरु का काम करता है, समाज को ऊपर उठाने के लिए सत्कर्म करता है तो उसको हजार फटकार पड़े तब भी वह गुरु का द्वार, हरि का द्वार, संतों का द्वार नहीं छोड़ेगा।

तीन प्रकार के लोग होते हैं : किसीका मन होता है तमोगुणप्रधान श्रद्धावाला। किसीकी राजसिक श्रद्धा होती है और किसी-किसीकी सात्त्विक श्रद्धा होती है।

तामसिक श्रद्धावाला देखेगा कि इतना दूँ और फटाक से फायदा हो जाये। अगर फायदा हुआ तो और दाव लगायेगा। जैसे सटोरी होते हैं न, पंजे से छक्का, अट्ठे से दहलावाले... एक बार-दो बार आ गया तो ठीक, वह दारू भी पिला देगा महाराज को और मुर्गियाँ भी ला देगा और महाराज भी ऐसे ही होते हैं।

आगे गुरु पीछे चेला।
दे नरक में ठेलम ठेला॥

...तो तामसी लोग ऐसा धंधा करते हैं और आपस में झगड़ मरते हैं।

राजसी आदमी की श्रद्धा टिकेगी लेकिन कभी-कभी डिगेगी भी, कभी टिकेगी-कभी डिगेगी, कभी टिकेगी-कभी डिगेगी। अगर टिकते-टिकाते उसका पुण्य बढ़ गया, सात्त्विक श्रद्धा हो गई तो हजार विघ्न आ जायें, हजार बाधाएँ आ जायें, हजार मुश्किलें आ जायें फिर भी उसकी श्रद्धा नहीं डिगती और वह पार पहुँच जाता है। इसीलिए सात्त्विक लोग बार-बार प्रार्थना करते हैं : 'हे मुकद्दर! तू यदि धोखा देना चाहता है तो मेरे दो जोड़ी कपड़े, गहने-गाँठें कम कर देना, रूपये-पैसे कम कर देना लेकिन भगवान और संत के श्रीचरणों के प्रति मेरी श्रद्धा मत छीनना।'

श्रद्धा बढ़ती-घटती, कटती-पिटती रहती है लेकिन उनके बीच से जो निकल आता है, वह निहाल हो जाता है। उसका जीवन धन्य हो जाता है।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

महापुरुषों का मौन

जो महापुरुष निजस्वरूप में मस्त रहते हैं, उनको छूकर आनेवाली हवा भी लोगों का कल्याण कर सकती है।

ऐसे महापुरुषों को बोलने की भी आवश्यकता नहीं है। मौन ही उनका परम भाषण होता है।

महात्मा बोधिधर्म से किसी सम्राट ने कहा :

''महात्मन्! सत्य का रास्ता बताने की कृपा कीजिए। जीवन का सार क्या है? कृपया इस विषय पर उपदेश देकर मुझे कृतार्थ कीजिए।''

बोधिधर्म यह सुनकर ध्यानस्थ हो गये। राजा उन्हें देखते-देखते थक गया। अतः उसने पुनः कहा :

''महात्मन्! कृपा करके मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।''

इस बार बोधिधर्म ने जमीन पर 'ध्यान' शब्द लिख दिया। किन्तु सम्राट उसे भी समझ नहीं पाया। अतः वह फिर बोला : ''महात्मन्! कृपा करके मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।''

बोधिधर्म दो बार तो उत्तर दे चुके थे, किन्तु सम्राट नहीं समझ पाया। अतः वे बोले :

''क्या तुम मुझसे झूठ बुलवाना चाहते हो? नहीं बोल रहा था तब पूरे सत्य में था। 'ध्यान' का इशारा किया तब उससे थोड़ा दूर आ गया। अब तुझे कहता हूँ कि शास्त्र एवं संतों की आज्ञा माना कर। अब यह बात सत्य से बहुत दूर आकर बोल रहा हूँ।''

अर्थात् मौन पहली अवस्था है, संकेत देना

दूसरी है और थोड़ा कह दिया, यह तीसरी अवस्था है। किन्तु लोग उसे भी समझ नहीं पाते तो महापुरुष बोलना शुरू कर देते हैं, दृष्टांत आदि द्वारा समझाते हैं- यह चौथी अवस्था है। यदि उससे भी नहीं समझ पाते तो महापुरुष ध्यान-कीर्तन आदि कराते हैं - यह पाँचवीं अवस्था है। किन्तु यदि पाँचवीं अवस्था तक उतरने पर भी लोग नहीं समझ पाते तो महापुरुष आज्ञा करते हैं कि 'ऐसा करो... ऐसा न करो।' - यह उनकी छठीं अवस्था है।

इस प्रकार लोगों के कल्याण के लिए महापुरुषों को अत्यंत नीचे आकर बोलना पड़ता है, फिर भी स्वयं रहते तो निजानंद की मस्ती में ही हैं।

❋

अपना पता

एक सेठ श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास जाकर बोला : ''महाराज मैंने सुना है कि आपके पास माँ काली स्वयं आती हैं।''

श्रीरामकृष्ण परमहंस : ''हाँ, आती हैं।''

''कब आती हैं ?''

''कोई पता नहीं। भगवान एवं फकीरों के आने का कोई समय होता है क्या ? जब उनकी मौज होती है, तब आते हैं।''

''मैं चाहता हूँ कि आप मेरा थोड़ा सहयोग करें। जब आपके पास माँ काली आयें तो उन्हें मेरे घर भेज दें।''

श्रीरामकृष्ण परमहंस को हुआ कि यह कोई ज्यादा चतुर आदमी है। अतः उन्होंने कहा :

''ठीक है, किन्तु तुम अपना पता दे जाओ।''

सेठ ने अपना पता लिखकर दे दिया। तब श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा :

''यह तुम्हारा पता कहाँ है ?''

''महाराज ! यह मेरा ही पता है।''

''नहीं, यह पता तुम्हारे शरीर का है। अपना पता दो तो माँ को भेजूँ ?''

''मेरा पता ?'' सेठ चकरा गया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस मुस्कराते हुए बोले :

''जिसे अपने पते का ही पता नहीं, वह माँ को कैसे बुला सकता है ?''

सेठ चुपचाप चल दिया।

सच ही तो है, जिसे अपना पता ही नहीं मालूम एवं देह के पते को अपना पता मान रहा है, वह परमात्मा को कैसे आमंत्रित कर सकता है ? किन्तु जिसे अपना पता चल जाता है, फिर उसे भगवान को आमंत्रित नहीं करना पड़ता वरन् वह स्वयं भगवद्स्वरूप हो जाता है। फिर वह कह उठता है :

देखा अपने आपको, मेरा दिल दीवाना हो गया।
ना छेड़ो मुझे यारों, मैं खुद पे मस्ताना हो गया॥

❋

कीमती पत्थर

एक सम्राट किसी गुरु को मानता था। एक बार उन गुरु को सम्राट का खजाना देखने की इच्छा हुई। राजा स्वयं अपने गुरु को ले गया एवं अपने सारे कोष खोलकर बताये। कहीं हीरे भरे थे, कहीं जवाहरात तो कहीं मानिक-पन्नादि रत्न थे।

गुरु : ''इन रत्नों से कितनी कमाई होती है ?''

राजा : ''इनसे कमाई नहीं होती, वरन् इन पर व्यय होता है। इनकी रक्षा के लिए पहरेदार रखने पड़ते हैं।''

गुरु : ''इन्हें रखने से खर्च होता है ? चलो, मैं तुम्हें इनसे भी बढ़िया पत्थर दिखाऊँ।''

सम्राट को हुआ कि इस बहाने भी गुरु के साथ चलने को मिलता है तो सौभाग्य है। चलते-चलते दोनों काफी दूर निकल गये। थोड़ी देर बाद एक विधवा माई के घर पहुँचे। वह माई चक्की पीस रही थी।

गुरु : ''यह तेरे पत्थरों से बढ़िया एवं उपयोगी पत्थर है, जो कई घरों का आटा पीसकर लोगों की भूख-निवृत्ति का काम करता है एवं बुढ़िया की भी आजीविका चलाता है।

राजन् ! उपयोगी चीज एवं कीमती चीज में फर्क है। जिन्हें तुम उपयोगी मानते हो, उन रत्नों को तो अपनी कीमत का पता ही नहीं है। तुम्हारी मान्यताओं ने ही उन्हें कीमत दे रखी है। उपयोग में तो यह चक्की का पत्थर आ रहा है, जो कमा रहा है जबकि तुम्हारे पत्थरों की सुरक्षा के पीछे तो खर्च हो रहा है।''

ज्ञान का आदर

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक बार राजा भोज के दरबार में सुंदर वस्त्राभूषण पहने हुए एक व्यक्ति का आगमन हुआ। अपनी वेशभूषा से वह बड़ा पंडित लग रहा था। उसको आते देखकर राजा भोज स्वयं सिंहासन से उठ खड़े हो गये और उसका स्वागत करते हुए उसे बैठने के लिए एक उच्च आसन दिया।

कुछ ही देर बाद एक कृशकाय व्यक्ति फटे-पुराने कपड़े पहने दरबार में प्रविष्ट हुआ। राजा भोज ने वाणी से भी उसका सत्कार नहीं किया। वह व्यक्ति अपने-आप ही एक साधारण-सी जगह पर बैठ गया।

सभा पूरी होने पर राजा भोज ने जिसके आगमन पर सम्मान किया था, उसे जाते वक्त पूछा तक नहीं, किन्तु जिसका वाणी द्वारा सत्कार तक नहीं किया था, उसे जाते वक्त आदर देते हुए कहा :

''आप कृपा करके राजसभा मे दुबारा पधारियेगा।'' फिर विनम्रता और सम्मान से उसे द्वार तक जाकर विदाई दी। यह व्यवहार देखकर लोग दंग रह गये और वजीर ने तो पूछ ही लिया :

''राजन्! आने पर जिसे आपने आदर सहित बिठाया, विदा के समय उसके द्वारा 'मैं जाता हूँ' ऐसा कहने पर भी आपने ध्यान तक नहीं दिया। लेकिन उस फटे-पुराने कपड़े पहने हुए कृशकाय व्यक्ति को धन्यवाद देकर छोड़ने के लिए आप द्वार तक गये! यह रहस्य हमारी समझ में नहीं आ रहा है, कृपा करके समझाइये।''

राजा भोज ने कहा :

''व्यक्ति जब आता है तब उसके वस्त्राभूषण का आदर होता है और जब जाता है तब उसके ज्ञान का आदर होता है। वह कृशकाय व्यक्ति बाहर से भले गरीब दिख रहा था, किन्तु भीतर से ज्ञान-धन से परिपूर्ण था। ज्ञान एक अनोखी प्रतिभा होती है, इसीलिए उसका इतना आदर किया गया।''

जिसके जीवन में ज्ञान का जितना आदर होता है, उतना ही वह कदम-कदम पर आनंद और प्रेम को प्रगटानेवाला होता है। बाह्य साज-सज्जा तो कुछ ही देर में नष्ट हो जाती है किन्तु ज्ञान अनंत काल तक शाश्वत बना रहता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपने जीवन में ज्ञान का आदर करे।

*

गौमाता : रोग-दोषनिवारिणी

[गतांक का शेष]

(२) बिवाई : कभी-कभी खुश्की तथा रक्त विकार के कारण पैर की एड़ियों की त्वचा काफी गहराई तक कट जाती है । इस फटे भाग में गंदगी तथा रोगाणु जमा हो जाते हैं। ऐसी एड़ियों पर गाय के गोबर का रस दिन में कई बार लगाया जाय तो बिवाई की व्याधि समाप्त हो जाती है तथा एड़ियों की त्वचा सामान्य तथा मुलायम हो जाती है।

(३) मिर्गी : मिर्गी को अपस्मार तथा मूर्छा रोग भी कहते हैं । यह मस्तिष्क विकार के कारण उत्पन्न होता है । रोगी अचानक ही बेहोश होकर गिर जाता है तथा काफी समय तक बेहोशी की अवस्था में रहता है। इस रोग में तिल के तेल में गाय के गोबर के रस का घोल बनाकर मस्तक पर मालिश करने से लाभ होता है । तेल में गोबर का रस मिलाकर मालिश करने पर मज्जातन्तु नीरोग हो जाते हैं ।

(४) लकवा : इसको अंगघात या पैरालिसिस भी कहते हैं। लकवा रोग में रोगग्रस्त भाग निस्तेज तथा शिथिल हो जाता है। लकवा आंशिक, पाक्षिक तथा पूर्ण शरीर का हो सकता है। पूरे शरीर में लकवा मारने पर प्राणी का बचना कठिन होता है परंतु पाक्षिक तथा आंशिक लकवा होने पर रोगी को बचाया जा सकता है । लकवायुक्त भाग पर गाय के ताजे गोबर की मालिश करें तथा कंडे की हल्की आँच से सिकाई करें तो बहुत लाभ होता है ।

(५) बाल गिरना तथा सफेद होना : नजला, जुकाम, तनाव तथा चिंता से बाल कमजोर होकर असमय ही गिरने लगते हैं तथा सफेद हो जाते हैं। यदि गाय के ताजे गोबर से बालों को धोया जाय तो बाल गिरना व सफेद होना काफी कम हो जाता है। गोबर के प्रयोग के बाद साबुन का प्रयोग न करें।

(६) चेहरे की कांति बढ़ाना : चेहरे पर झांई, दाग, फुन्सी, मुँहासे के दाने पड़ने से चेहरा कांतिहीन तथा भद्दा लगने लगता है। बिजौरा, नींबू की जड़, घी और मनःशिला को गाय के ताजे गोबर के रस में पीसकर लगाने से चहेरे की कांति बढ़ती है।

(७) कायाकल्प : मनुष्य का कायाकल्प करने के लिए भिलावा को गाय के गौमूत्र में पकाकर भल्लातक बनाया जाता है जो जहरीला होता है । अतः कुशल वैद्यों की निगरानी में ही यह प्रयोग करना चाहिए।

(८) दंशहारी या विषहारी : गाय का गोबर बहुत ही दंशहारी है । बंदर द्वारा काटे हुए अंग पर ताजे गरम-गरम गोबर का रस लगाने से पीड़ा जादू की तरह गायब हो जाती है । बिच्छू दंश में गाय के गोबर का लेप लाभकारी होता है । सर्पदंश से मृत व्यक्ति को काली गाय के गोबर में रखने से उसको कभी-कभी चेतना आ जाती है ।

(९) निस्तेज शरीर में चेतना : गाय के गोबर की राख को निस्तेज शरीर पर मलने से उसमें चेतना आ जाती है।

(१०) आँख दर्द व लालिमा : गाय के गोबर की पोटली बनाकर आँख बंद करके एक घंटे तक उस पर रखकर लेटे रहें। दर्द तथा लालिमा कम हो जाएगी।

(११) फोड़ा, फुन्सी तथा बदरंग : फोड़ा, फुन्सी तथा नस फटने से नील पड़ने पर गाय के गोबर की पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है। (क्रमशः)

लौंग

मलक्का एवं अंबोय के देश में लौंग के झाड़ अधिक उत्पन्न होते हैं। लौंग का उपयोग मसालों एवं सुगंधित पदार्थों में अधिक होता है। लौंग का तेल भी निकाला जाता है।

लौंग के गुणधर्म

लौंग लघु, कड़ुवा, चक्षुष्य, रुचिकर, तीक्ष्ण, पाककाल में मधुर, पाचक, स्निग्ध, अग्निदीपक, हृद्य, वृष्य और विशद है। यह वायु, पित्त, कफ, आँव, शूल, आनाहवायु (आफरा), खाँसी, हिचकी, वात दोष, विष, छाती में चाँदी, तृषा, पीनस, रक्तदोष तथा ऊर्ध्व वायु का नाश करता है। लौंग में मुख, आमाशय एवं आँतों में रहनेवाले सूक्ष्म कीटाणुओं का नाश करने एवं सड़न को रोकने का गुण है।

लौंग के उपयोग

(१) सर्दी लगने पर : लौंग का काढ़ा बनाकर मरीज को पिलाने से लाभ होता है।

(२) कफ और खाँसी : मिट्टी का तवा या तवे जैसा टुकड़ा गरम करें। लाल हो जाने पर बाहर निकालकर एक बर्तन में रखें और उसके ऊपर सात लौंग डालकर उन्हें सेकें। फिर लौंग को पीसकर शहद के साथ लेने से लाभ होता है।

(३) दाँत का दर्द : लौंग के अर्क को रूई पर डालकर उस फाहे को दाँत पर रखें। इससे दाँत के दर्द में लाभ होता है।

(४) मूर्छा एवं मिर्गी की शुरूआत : लौंग को घिसकर उसका अंजन करने से लाभ होता है।

(५) रतौंधी : बकरी के मूत्र में लौंग को घिसकर उसको आँजने से लाभ होता है।

(६) सिरदर्द : सिरदर्द में लौंग का तेल सिर पर लगाने से या लौंग को पीसकर ललाट पर लेप करने से राहत मिलती है।

(७) श्वास की दुर्गंध : लौंग का चूर्ण खाने से अथवा दाँतों पर लगाने से दाँत मजबूत होते हैं। मुँह की दुर्गंध कफ, लार, थूक के द्वारा बाहर निकल जाती है। इससे श्वास सुगंधित निकलती है, कफ मिट जाता है और पाचनशक्ति बढ़ती है।

(८) गर्भिणी की उल्टी : २ लौंग को गरम पानी में भिगोकर वह पानी पीने की सलाह एलोपैथ के डॉक्टरों द्वारा भी दी जाती है।

(९) अग्निमांद्य, अजीर्ण एवं हैजा : लौंग का अष्टमांश काढ़ा अर्थात् आठवाँ भाग जितना पानी बचे, ऐसा काढ़ा बनाकर पिलाने से रोगी को राहत मिलती है।

(१०) हैजे में प्यास लगने पर अथवा मिचली आने पर : ७ लौंग अथवा दो जायफल अथवा दो ग्राम नागरमोथ पानी में उबालकर ठंडा करके रोगी को पिलाने से लाभ होता है।

(११) खाँसी, बुखार, अरुचि, प्रमेह, संग्रहणी एवं गुल्म : लौंग, जायफल एवं लेंडीपीपर १ भाग, बहेड़ा ३ भाग, काली मिर्च ३ भाग और लौंग १६ भाग लेकर उसका चूर्ण करें। उसके बाद २ ग्राम चूर्ण में उतनी ही मिश्री डालकर खायें। इससे लाभ होता है।

(१२) मूत्रल : लौंग का चूर्ण नित्य १२५ मि.ग्रा. से २५० मि.ग्रा. लेने से मूत्रपिंड से मूत्रद्वार तक के मार्ग की शुद्धि होती है और मूत्र खूलकर आता है।

(१३) खाँसी के लिए लवंगादिवटी : लौंग,

काली मिर्च, बहेड़ा- इन तीनों को समान मात्रा में मिला लें। फिर इन तीनों की सम्मिलित मात्रा जितनी खैर की अंतरछाल अथवा सफेद कत्था भी इसमें डालें। इसके पश्चात् बबूल की अंतरछाल के काढ़े में तीन-तीन ग्राम वजन की गोलियाँ बनायें। रोज दो-तीन बार एक-एक गोली मुँह में रखने से खाँसी में शीघ्र राहत मिलती है।

(१४) खाँसी वगैरह के लिए लवंगादिचूर्ण : लौंग, जायफल और लेंडीपीपर आधा तोला, काली मिर्च दो तोला और सोंठ १६ तोला लेकर उसका चूर्ण तैयार करें। अब चूर्ण के बराबर मात्रा में मिश्री मिलायें। यह चूर्ण तीव्र खाँसी, ज्वर, अरुचि, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य एवं संग्रहणी में उपयोगी है।

(१ तोला = १२ ग्राम)

विशेष : लवंगादि सुगंधी पदार्थों का चूर्ण तभी बनायें जब जरूरत हो, अन्यथा पहले से बनाकर रखने से इसमें विद्यमान तेल उड़ जाता है।

बापूजी के प्रसाद 'ऋषि प्रसाद' की कृपा

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद सद्गुरुवर संत-शिरोमणि श्री आसारामजी बापू के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वन्दन...

मैं हृदयरोग से पीड़ित था। सौभाग्य रहा है मेरा कि संत श्री आसारामजी बापू के प्रथम दर्शनों का लाभ उत्तरायण शिविर १२ से १४ जनवरी '९८ के दौरान अमदावाद आश्रम में मिला। मैं कृतकृत्य हो गया। संतश्री के अमोघ वचनामृत, दुर्लभ सत्संग-गंगा, मधुर पीयूषवाणी, पावन प्रसाद तथा भक्तिरस में सराबोर अपार श्रद्धालुगण... मानो साक्षात् स्वर्गपुरी तो संत श्री आसारामजी का यह आश्रम ही है। मेरा मनमयूर नाच उठा। संतश्री के प्रसाद मात्र में इतनी चमत्कारिक एवं प्रभावोत्पादक शक्ति कि मेरा हृदयरोग कब काफूर हो गया, मुझे पता तक नहीं चला। मैं अदना व्यक्ति श्रद्धा, सत्संग एवं शांति की त्रिवेणी का क्या वर्णन करूँ ? क्योंकि...

गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी।

सद्गुरुदेव के सत्संग-प्रवचनों से लिए गए अंशों के आधार पर प्रकाशित 'ऋषि प्रसाद' मासिक पत्रिका में ज्ञान, कर्म और भक्ति का एक भावोन्मेषवाला ज्ञान भरा रहता है। इसमें बुद्धि, शक्ति और आत्मविश्वास बढ़ाने की कुंजियाँ रहती हैं। इसके अलावा इसमें **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** की सत्प्रवृत्ति पर बहुत जोर दिया गया रहता है। धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, शैक्षिक, नारी उत्थान, बाल कल्याण, युवान कर्त्तव्यपरायणता एवं साधना

के सोपान भी सहज परिलक्षित होते हैं। इसमें वर्णित हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति-सभ्यता की पावनता, भव्यता, सेवा की अमूल्य निधियों, सर्वदेवमयी गौमाता की महिमा एवं उपादानता सदैव श्रेष्ठ व समय-सापेक्ष है। संस्था समाचारों को पढ़कर भाव उछल पड़ता है। 'जीवन सौरभ' स्तम्भ में वर्णित दादागुरुश्री ब्रह्मलीन, तपोनिष्ठ, ब्रह्मज्ञानी, ईश्वरावतार पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का जीवन तो हमें और भी उद्वेलित करता है। यह पत्रिका ईशनिष्ठा व मानवसेवा के लिए सजीव प्रेरकपुंज है। ऋषि-मुनियों, साधु-संतों के प्रसंग हमें नई रोशनी देते हैं। प्रथमावरण व अंतिमावरण के रंग-बिरंगे चित्र बरबस बोलते-से मन मोह लेते हैं।

ऐसी सरल, शुद्ध, हृदयग्राही, मनभावन भाषा-शैली हृदय को आत्मशांति देती है, कुछ होने-करने के लिए सोए को उठाती है, उठे हुए को खड़ा करती है तथा खड़े को जीवन के रणांगण में कमर कस उतरने को सचेत करती है। अन्य बाजारू पुस्तकों के बड़े-बड़े मूल्यों को देखते हुए 'ऋषि प्रसाद' मासिक का वार्षिक मूल्य रू. ५० नगण्य-सा प्रतीत होता है। यह तो संत श्री आसारामजी बापू की महान दया-करुणा और स्नेह के प्रसाद-वितरण का परिचायक है। यह पत्रिका मात्र भारत तक ही सीमित नहीं, अपितु विदेशों तक में इसकी लाखों प्रतियाँ पहुँचती हैं। सदस्यों की संख्या में उत्तरोत्तर भारी वृद्धि का होना ही 'ऋषि प्रसाद' की लोकप्रियता का परिचायक है। मुझे स्वयं इस पत्रिका से इतना लाभ हुआ है कि मैं इसका आजीवन सदस्य बन गया हूँ और चाहता हूँ कि अन्य अपरिचित लोग भी इसका सदस्य बनकर अपने जीवन को उन्नत बनायें। मैं तो स्वयं गुरुकृपा से एक सेवाधारी बनने पर अपने आपको भाग्यशाली मानता हूँ। सुधी पाठकगणों ! 'ऋषि प्रसाद' पढ़ें पूरे मनोयोग से गहरे पानी पैठ तो अवश्य पायेंगे हीरे-मोती-जवाहरात। जनता-जनार्दन तक यह 'ऋषि प्रसाद' पहुँचाने के दैवी कार्य करनेवाले देवात्माओं को मेरा प्रणाम है !

– सांवलाराम 'नामा' (व्याख्याता)
भीनमाल, जालोर (राज.).

गुरुकृपा से नवजीवन मिला

मैं काफी दिनों से हृदयरोग से पीड़ित था। सन् १९९२ में छिंदवाड़ा के एक डॉक्टर ने मुझे जबलपुर (म. प्र.) के अस्पताल में इलाज कराने के लिए कहा। किन्तु वहाँ का इलाज कराने पर मेरा स्वास्थ्य और अधिक खराब हो गया। मुझे बहुत तेज बुखार आया... ठंड लगने लगी। अतः डॉक्टरों ने मेरा इलाज करने के बदले अस्पताल से मेरी छुट्टी कर दी। वहाँ से मैं उसी पीड़ित अवस्था में वापस छिंदवाड़ा आया।

यहाँ पहुँचने पर मेरे बच्चों ने मुझे बताया कि इन्दौर में दशहरे के अवसर पर पूज्य बापू का ध्यान योग शिविर लगनेवाला है। आप वहाँ हमारे साथ चलिए। परंतु मुझे भीतर से कोई विश्वास न था। मुझे लगा कि जब इतने सारे डॉक्टर मेरा इलाज न कर पाये तो ये संत क्या करेंगे ? फिर भी मैं बच्चों के आग्रह करने पर वहाँ गया।

ध्यान योग शिविर में एक बार जब मैं ध्यान में बैठा था तब पूज्यश्री की ओर से एक सेव मेरी छाती के बाँयीं ओर (हृदय पर) आकर लगा। तब मैंने वह प्रसाद स्वीकार कर स्वयं भी ग्रहण किया और दूसरों को भी बाँटा। उसके बाद से तो मैं क्या कहूँ ? मुझे आज तक हृदय की कोई परेशानी नहीं हुई। मैं अब बिल्कुल ठीक हो गया हूँ। पहले तो डॉक्टर कहते थे कि ५०-६० हजार रूपये खर्चा आयेगा और मुंबई, दिल्ली जाना पड़ेगा। परंतु पूज्य सद्गुरुदेव की एक मीठी नजर और प्रसादरूपी संकल्प ने मुझे पूर्णतः

स्वस्थ बना दिया है। अब तो मुझे किसी परहेज की आवश्यकता नहीं होती है, जबकि पहले तो मेरी जेब में सदैव ही दवाइयाँ रखी रहती थीं। आज मैं स्वस्थ जीवन बिता रहा हूँ। मैं पूज्यश्री को शत-शत नमन करता हूँ।

नारायण

(हस्ताक्षर)
नारायणराव ठवड़े
गोंदरा, जि. छिंदवाड़ा (म. प्र.).

*

'... ऐसी भूल कभी मत करना'

मैं पहले रेलवे सेवा में कार्यरत था। जबसे मैं पूज्य बापू के सान्निध्य में आया एवं गरीबों की सेवा हेतु एक समिति का संचालन करने लगा, तबसे नौकरी में मेरा मन नहीं लगता था। इसके लिए मैंने बापूजी से चर्चा की तो बापूजी ने मुझे नौकरी छोड़ने को कहा, जो कि मेरे मन की बात थी। आपश्री के निर्देशानुसार मैंने स्वेच्छा से सेवा-निवृत्ति का आवेदन-पत्र रेलवे विभाग को प्रस्तुत कर दिया। परन्तु जब मेरे परिवार के सदस्यों ने मुझे अपना त्यागपत्र वापस लेने के लिए उकसाया तो उनकी बातों में आकर मैंने गुरुआदेश की अवहेलना कर त्यागपत्र वापस ले लिया। किन्तु मेरे चाहने से क्या होता है ? होता तो जीवन में वही है, जो सद्गुरु चाहते हैं। मेरे जीवन में भी इसी प्रकार की निम्नलिखित घटना घटी :

३० जुलाई, १९९६ को गुरुपूर्णिमा के अवसर पर मैं अपनी पत्नी सहित पूज्य बापूजी के पास दिल्ली आया था। इसके कुछ दिन बाद ६ अगस्त को गुड़गाँव में सड़क पार करते हुए मैं अचानक मोटर साईकिल से दुर्घटनाग्रस्त हो गया। इससे मेरे सिर में अति गम्भीर चोटें आईं। जिसने टक्कर मारी थी उसकी सहायता से मेरी पत्नी ने मुझे गुड़गाँव के चिकित्सालय में भर्ती कराया। किन्तु हालत अति गम्भीर होने की वजह से मुझे सफदरगंज चिकित्सालय, दिल्ली में ले जाया गया। वहाँ के चिकित्सक ने इलाज के लिए पहले फीस जमा कराने के लिए कहा तो मेरी पत्नी पैसा जमा कराने में असमर्थ थी। किन्तु गुरुकृपा से वहाँ उन्होंने मेरा निःशुल्क इलाज करना स्वीकार कर लिया। शरीर में सभी जगह नलियाँ लगा रखी थीं। जहाँ डॉक्टर के हिसाब से मैं जीवन एवं मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहा था, वहीं एक दिन मुझे ऐसा एहसास हुआ कि गुरुदेव मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे कहा कि :

''गुरु से ज्यादा जगवालों की बात को माननेवाली भूल कभी मत करना।''

मुझे ऐसा भी प्रतीत हुआ जैसे गुरुजी ने मेरे सिर के सारे घाव साफ किये। यह सब क्या था, यह मैं नहीं जानता। किन्तु इतना तो जानता हूँ कि यह वास्तविकता है कि जहाँ मैं चार दिनों से पलंग से बाँध रखा गया था, वहीं मैं अपने-आपको सब चीजों से मुक्त कर स्वयं शौच आदि से निवृत्त होने गया, जिसे सब देखकर हैरान रह गये ! उसीके दूसरे दिन मैं वहाँ से छुट्टी लेकर घर आ गया और गुरुकृपा से आज तक ठीक हूँ।

सच है, हमारे जैसे शिष्य अज्ञानतावश भले गुरु की अवहेलना कर दें, किन्तु सद्गुरु अपने शिष्यों को सही मार्गदर्शन देकर उनके कष्टों का निवारण करते हैं। अब मैं रेल की सेवा छोड़ गुरुकृपा से अपना जीवन आनंद से व्यतीत कर रहा हूँ तथा गुरुनिर्दिष्ट मार्ग से दीन-दुखियों और गरीबों की सेवा में कर्त्तव्यनिष्ठ हूँ।

पूज्य बापू के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम !

भवदीय,
के. के. खन्ना

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ७३ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया नवम्बर तक अपना नया पता भिजवा दें।

जालंधर : पंजाब प्रान्त के जालंधर शहर में दिनांक : २३ से २७ सितम्बर तक पूज्य बापू के पावन सान्निध्य में दिव्य सत्संग समारोह आयोजित हुआ ।

जालंधर के हजारों प्रभु-प्रेमी भक्तजन हररोज हो रही मूसलाधार वर्षा में भीगते हुए भी एकाग्रचित्त होकर पूज्यश्री के मुखारविन्द से प्रस्फुटित पीयूषवर्षी अमृतवाणी का आस्वादन करते रहे । वाकई यह अपने-आप में एक प्रकार का अनूठा सत्संग-कार्यक्रम था ।

सत्संग-समाप्ति के दिन यहाँ कई लोगों ने मंत्रदीक्षा प्राप्त कर अपनी आध्यात्मिक साधना का श्रीगणेश किया । दिनांक : २७ की सुबह के सत्संग का समापन करके अलख के औलिया पूज्य बापूजी ने दोपहर को अमृतसर आश्रम का शिलान्यास किया और वहाँ उपस्थित हजारों भक्तों को दर्शन एवं सत्संग का लाभ मिला । फिर उसी दिन शाम को जालंधर में सत्संग की पूर्णाहुति करके पूज्यश्री लुधियाना की ओर रवाना हुए ।

पूज्य बापू के सान्निध्य में यहाँ स्कूल-कॉलेज के हजारों विद्यार्थियों ने गुरुकुल पद्धति के अनुसार यादशक्तिवर्धन, तन की तन्दुरुस्ती, मन की प्रसन्नता व बुद्धि में समत्वयोग के विकास का ज्ञान प्राप्त किया ।

लुधियाना : दिनांक : १ से ४ अक्तूबर तक लुधियाना आश्रम में ध्यान योग साधना शिविर का आयोजन हुआ जिसमें देश-विदेश से आए हुए आत्मकल्याण के इच्छुक हजारों साधकों ने साधना के विभिन्न गुप्त रहस्यों को समझते हुए एवं आत्म-परमात्मतत्त्व की गहराइयों में गोता लगाते हुए आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त किया ।

दिनांक : ३ को पंजाब के मुख्यमंत्री श्री प्रकाश सिंह बादल दोपहर के सत्संग में उपस्थित हुए और पुष्पहार से पूज्यश्री का स्वागत किया । उन्होंने मुक्त कंठ से इस दिव्य शिविर की प्रशंसा की ।

इसके बाद दिनांक : ४ की शाम को पूज्य बापू ने शिविर की पूर्णाहुति का शंख बजाया और तुरंत नजफगढ़ (दिल्ली) विद्यार्थी शिविर के लिए लुधियाना से हवाई जहाज से रवाना हुए ।

नजफगढ़ (दिल्ली) : दिनांक : ४ से ७ अक्तूबर तक नजफगढ़ में विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर सम्पन्न हुआ । पूज्यश्री ने वहाँ उपस्थित हजारों विद्यार्थियों को जीवन जीने की वास्तविक कला सिखाई तथा उन्हें इस भीषण कलिकाल में भी एक साथ ईश्वरीय मार्ग की ओर उन्मुख किया । यही नहीं, शक्तिपात के समर्थ आचार्य, अनुभवनिष्ठ पूज्य संतश्री ने उन्हें ध्यान की गहराइयों में अवगाहन कराकर ईश्वरीय कृपा का अनुभव भी कराया ।

विद्यार्थी जागृति शिविर में सम्मिलित सम्पूर्ण बच्चों के जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए पूज्यश्री ने उनमें अमूल्य आध्यात्मिक सूत्रों का निरूपण करते हुए मनोबल, भावबल एवं प्राणबल विकसित करने की तकनीक बताई ।

आपश्री ने अनेक प्रेरक प्रसंगों द्वारा विद्यार्थियों को आत्मशक्ति, यादशक्ति व एकाग्रता की वृद्धि के लिए विभिन्न युक्तियाँ बतलाते हुए उन्हें निष्कपटतापूर्वक अपने कर्त्तव्य पथ पर डटे रहने का उपदेश किया । वहाँ जाहिर सत्संग का भी आयोजन किया गया था जिसमें उपस्थित हजारों लोगों ने पूज्यश्री की अमृतवाणी का लाभ लिया । शिविर के आखिरी दिन विद्यार्थियों के अनुनय-विनय से प्रसन्न होकर पूज्य बापूजी ने उनकी स्मरणशक्ति व मेधाशक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें सारस्वत्य मंत्र प्रदान किया ।

पूज्यश्री दिनांक : ७ को शिविर का समापन करके मेरठ की ओर रवाना हुए ।

मेरठ : सन् १८५७ के गदर का केन्द्र बनी मेरठ नगरी में दिनांक : ८ से ११ अक्तूबर तक गीता-भागवत सत्संग समारोह आयोजित हुआ ।

गीता-भागवत सत्संग समारोह के इस विशाल आयोजन में श्रोताओं की नित्य निरंतर बढ़ती हुई भीड़ ने इसकी भव्यता व दिव्यता को स्वतःसिद्ध कर दिया । मेरठ शहर के हर धर्म व जाति के स्त्री-पुरुषों ने सत्संग की सरिता में अवगाहन कर अपना भाग्योदय किया ।

जैसे शराबी शराब खोज लेता है और जुआरी जुए का अड्डा खोज लेता है, ऐसे ही सच्चे संतों के सच्चे सेवक सेवा स्वयं ढूँढ लेते हैं और उसमें तन-मन-धन से जुट जाते हैं। धनभागी हैं वे लोग एवं आयोजकगण जो इस दैवी कार्य में साझीदार हुए।

दिनांक : १० को विद्यार्थियों के लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें हजारों विद्यार्थियों ने सत्संग का लाभ लिया और अपना कदम उन्नति की ओर बढ़ाया।

अमदावाद : पर्वों की महारानी दीपावली पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में खूब हर्षोल्लास एवं ईश्वरीय आनंद के साथ मनाई गई।

इस मंगल पर्व पर पूज्यपाद सद्गुरुदेव के पावन दर्शनार्थ अमदावाद आश्रम में देश के कोने-कोने से हजारों-हजारों भक्तों के अलावा दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका, हाँगकाँग तथा अन्य देशों से आये हुए भक्तों ने दर्शन-सत्संग पाकर धन्यता का अनुभव किया।

विदेशों में धन का अंबार तो है, पर वहाँ निःस्वार्थ और निर्दोष प्रेम का सर्वथा अभाव है। अपने प्रेमास्पद पूज्य गुरुदेव की मधुर मुस्कान व उनका निःस्वार्थ प्रेम पाकर भक्तों के नेत्रों से आनंदाश्रु बह निकले। सारा आश्रम, सारा देश तेल व बाती के संयोग से प्रज्वलित दीपक से प्रकाशित था, पर यहाँ सद्गुरु और सत्शिष्यों के दिलों में ऐसी भी अलौकिक ज्योत जल रही थी जिसके सामने बाहर का प्रकाश फीका पड़ रहा था। मानो,

पा लिया मन मंदिर में, दिलबर का दीदार।
छलका दरिया आनंद का, खुला जो दिल का द्वार॥

भक्तों के दिल का द्वार खटखटाते हुए हृदयसम्राट पूज्य बापू ने कहा :

''...यह दिवाली तो वर्ष में एक बार ही आती है किन्तु एक दिवाली ऐसी भी है जो एक बार ठीक से मना ली तो उस दिवाली का आनंद, उस दिवाली का सुख, उस दिवाली का प्रकाश कभी कम नहीं होता।''

'Happy Diwali' के बजाय 'हरि दिवाली' का शंखनाद करते हुए पूज्य बापू ने कहा :

''अपने घर के कूड़े-करकट के साथ ही हृदयरूपी घर से भी काम-क्रोध, राग-द्वेष, घृणा-ईर्ष्या आदि विकारों को निकाल फेंको। नये-नये कपड़े, नई-नई वस्तुओं के साथ शांति, धैर्य, प्रसन्नता, ध्यान, समाधि आदि सुंदर चीजें भी अपने हृदय में धारण करो। जिस प्रकार अमावस्या की काली रात भी दीपों के प्रकाश से जगमगा उठती है, उसी प्रकार इन सद्गुणों से तुम्हारा हृदय भी जगमगा उठेगा, तुम्हारा जीवन चमक उठेगा जो औरों को भी प्रकाश देगा।''

'आत्मदिवाली' का आह्वान करते हुए आत्ममस्ती में मस्त संतश्री ने कहा :

''जैसे गिल्ली-डंडा खेलनेवाला गिल्ली को एक डंडा मारकर थोड़ी ऊपर उठाता है, फिर उस पर जोरों से दूसरा डंडा मारकर उसे गगनगामी कर देता है, ऐसे ही उत्सव-पर्व आदि मनाकर अपनी बुद्धिरूपी गिल्ली को ऊपर उठाओ, फिर ब्रह्मज्ञान का ऐसा डंडा उसे मारो कि मोह-माया और काम-क्रोध आदि से छूटकर वह परमात्मा तक पहुँच जाये। सारी पढ़ाइयों का, सारे पर्वों का, सारे जपों का, सारे साधनों का फल यही है कि जीव अपने शिवस्वरूप को पा ले, अपनी आत्मदिवाली में आ जाए।''

गाँधीनगर (गुज.) : दिनांक : २५ से २८ अक्तूबर तक गाँधीनगर में आयोजित विश्वशांति सत्संग समारोह में कई कलेक्टर, ऑफिसर, गुजरात राज्य सचिवालय (गाँधीनगर) के विभिन्न विभागों के सचिवों एवं मंत्रियों के साथ मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेलजी ने सम्मिलित होकर चारों दिन सत्संग का लाभ लिया। गुजरात राज्य के वर्त्तमान राज्यपालश्री की धर्मपत्नी ने भी प्रतिदिन के सत्संग में उपस्थित होकर पूज्यश्री की अमृतवाणी का रसास्वादन किया। राज्यपाल श्री अंशुमान सिंहजी ने अंतिम दिन सत्संग का लाभ लिया एवं जाते वक्त कहा :

''मैं भी पूरे ढाई घंटों तक बैठकर सत्संग का लाभ लेता, लेकिन कुछ आवश्यक कार्यवश मुझे जाना पड़ता है, जिसका मुझे खेद है।''

महामहिम राज्यपालश्री का पूरा परिवार पहले से ही पूज्य बापू का सत्संगी है।

गुजरात के वर्त्तमान मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेलजी ने पूज्य बापू से प्रार्थना की :

''गुजरात समृद्ध एवं सुसंस्कारी बने, ऐसा संस्कार सींचने का यह उत्कृष्ट कार्य और कृपा आप ही कर सकते हैं। जैसे व्यक्ति के हाथ-पैर आदि विभिन्न शरीरांगों का

संचालन मस्तिष्क करता है, ऐसे ही सम्पूर्ण गुजरात राज्य का संचालन यहाँ गाँधीनगर से होता है। पू. बापू! आपको मैं कोटि-कोटि प्रणाम करते हुए प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सहित सचिवालय के समस्त कर्मचारियों का मन गुजरात की प्रजा के कष्ट-निवारण में, उनकी सेवा में लगे। ईमानदारी से, सच्चाई से जनता-जनार्दन की सेवा करके हम जनार्दन श्रीहरि को संतुष्ट करने में सफल हों। ऐसा करके हम अपने दुर्लभ मनुष्य जन्म को सार्थक करें, धन्य करें। अन्धे स्वार्थ और विलासिता से हम बचें। मस्तिष्क ठीक तो सारा शरीर ठीक, ऐसे ही गुजरात का मस्तिष्क गाँधीनगर सुचारू रूप से राज्य का संचालन करे, ऐसा आशीर्वाद दें। हे पू. बापू! मैं आपको कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

भाइयों और बहनों! मैं गुजरात का मुख्यमंत्री होने के नाते तथा आप सभी श्रोतागण की ओर से भी पू. बापू को पुनः प्रणाम करता हूँ। मैं पूज्य बापूजी का पुराना सत्संगी भी हूँ। सत्य का संग कराये ऐसी संतवाणी हम-आप सबको अपने गृह-आँगन गाँधीनगर में प्राप्त हो रही है, इसकी मुझे खूब-खूब प्रसन्नता है।''

इस अवसर पर उपस्थित गाँधीनगर के बहुत सारे मंत्रियों, सचिवों एवं वरिष्ठ अधिकारियों ने सत्संग का खूब लाभ लिया। पूज्यश्री की अमृतवाणी का पान कर उनका हृदय गद्गद् हो उठा। वे अपने को धन्य महसूस कर रहे थे। सचमुच वे सारे सत्संगी बड़े धनभागी थे।

नागरिक सम्मान पत्र

गाँधीनगर-गुजरात

भारतीय संस्कृति के प्रहरी ब्रह्मवेत्ता प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के पावन सान्निध्य में गाँधीनगर में दिनांक : २५ से २८ अक्तूबर '९८ के दौरान विश्वशांति सत्संग समारोह का आयोजन किया गया। इस प्रकार पूज्य बापू के अलौकिक आशीर्वाद की गंगा का अवतरण गाँधीनगर में हुआ है। इससे गाँधीनगर की विविध संस्थाएँ और जनता बेहद हर्ष एवं स्वर्गीय सुख के साथ-साथ अहोभाव और आत्मसमर्पण की भावना प्रगट करती है तथा पूज्य बापू का हार्दिक अभिवादन के साथ स्वागत करते हुए गौरव का अनुभव करती है।

सिर्फ नगर में ही नहीं वरन् राज्य में, देश में, और समग्र समष्टि में सच्चे अर्थ में सुख, शांति, समृद्धि और संस्कारों का सिंचन अथक परिश्रम से करते हुए, जीवन के मूलभूत मूल्यों को जगाते हुए, पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने के लिए कटिबद्ध होकर कठोर तपश्चर्या करनेवाले पूज्य आसारामजी बापू को गाँधीनगर की जनता का कोटि-कोटि प्रणाम है। गाँधीनगर का अहोभाग्य है कि वर्षों के बाद यहाँ की जनता सर्वधर्म संवेदना के महासागर में सैर करने का अमूल्य लाभ प्राप्त करने को भाग्यवान बनी। ऐहिक मिथ्या जीवन को जान-पहचानकर दिव्य ऐश्वर्ययुक्त जीवन बिताकर मानव में से महेश्वर बनने के लिए प्रोत्साहित हुई है। पूज्य बापू के माध्यम द्वारा परमात्मा की असीम कृपा का ही यह परिणाम है।

पूज्य बापूजी की ऐसी असीम कृपा से गाँधीनगर की जनता हजारों अश्वमेध यज्ञ करने से भी अधिक पुण्य अर्जित करने के लिए भाग्यवान हुई है। फलतः पुष्प रूप में गाँधीनगर शहर वसाहत महामंडल एवं अन्य विविध सेवाभावी संस्थाएँ और समग्र जनता यह नागरिक सम्मान पत्र पूज्य बापू के चरणकमलों में अर्पित करते हुए धन्यता का अनुभव कर रही है। परम कृपालु परमात्मा ऐसे अमूल्य अवसरों से गाँधीनगर की विविध संस्थाओं और जनता-जनार्दन को परिपुष्टि देते रहें, ऐसी अभ्यर्थना है।

– गाँधीनगर शहर वसाहत महामंडल और अन्य विविध सेवाभावी संस्थाएँ एवं नगरजन

दिनांक : २८-१०-९८

गाँधीनगर (गुज.)

अष्टलक्ष्मी, प्लॉट नं. २२०, सेक्टर-२०, गाँधीनगर। फोन : २३३७०.

पूज्य बापू के अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
३० अक्तूबर से १ नवम्बर '९८	बिलिया	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३ से ५	'भक्तिधाम', प्रकाश विद्यालय मैदान, सिद्धपुर खेरालु रोड (गुज.).	(०२७६७) २२०२८, २३१०७, २३७११, २०३९३.
४ से ८ नवम्बर '९८	पश्चिम दिल्ली	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ४-३० से ६-३०	राजा गार्डन चौक, नई दिल्ली-२७	५५८१३०४, ५६८३८२५, ५४६८५३३, ५७२९३३८, ५७६४१६१.
११ से १५ नवम्बर '९८	वाराणसी	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ४-३० से ६-३०	महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ मैदान, वाराणसी (उ. प्र.).	२२३६०१, ३५५७०३.
१३ नवम्बर		विद्यार्थियों के लिए	सुबह ९-३० से ११-३०		
१८ से २२ नवम्बर '९८	पटना	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३ से ५	गाँधी मैदान, पटना, बिहार।	२२५५९६, २२१७९३, ६७२५९४.
२० नवम्बर		विद्यार्थियों के लिए	सुबह ९-३० से ११-३०		
२६ से २९ नवम्बर '९८	जमशेदपुर	सत्संग समारोह	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३ से ५	जी. टाउन मैदान, साउथ पार्क, जमशेदपुर।	(०६५७) ४२५३१९, ४२८४८५, ४३१७६३.

पूर्णिमा दर्शन : (१) ४ नवम्बर '९८ सुबह ६ से ७-३० तक अमदावाद आश्रम में। सुबह १० के बाद सत्संग मंडप, राजा गार्डन चौक, नई दिल्ली में।

(२) ३ दिसम्बर '९८ सुबह ६ से ७-३० तक अमदावाद आश्रम में। सुबह १० के बाद दिल्ली आश्रम में।

'ऋषि प्रसाद' पंचवर्षीय सदस्यता योजना

नव वर्ष के मंगल पर्व पर 'ऋषि प्रसाद' के पाठकों के लिए एक विशेष लाभ-योजना प्रारम्भ की जा रही है। इस योजना के अनुसार जो पाठक पाँच वर्ष के लिए 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता ग्रहण करेंगे, उन्हें कार्यालय की ओर से ५० रूपयों की सहूलियत प्रदान की जायेगी। इस प्रकार पंचवार्षिक शुल्क २५० रूपये के स्थान पर मात्र २०० रूपये होगा। इस योजना से उपरोक्त प्रत्यक्ष लाभ के अलावा अन्य कई महत्त्वपूर्ण फायदे भी हैं। जैसे, सर्वप्रथम तो आपको प्रतिवर्ष अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराने एवं उसमें निवेशित होनेवाले समय व श्रम से निजात मिलेगी, जिसका सदुपयोग आप अन्यत्र कर सकते हैं। दूसरे, डी. डी./एम. ओ. के व्यय में कमी आयेगी। उदाहरणस्वरूप, पचास-पचास रूपयों का डी. डी. पाँच बार करने पर ७५ रूपयों का व्यय आयेगा जबकि एकमुश्त २०० रूपयों का डी. डी. करने पर मात्र १५ रूपयों का अल्प व्यय आयेगा और इस प्रकार आपके ६० रूपये बच जायेंगे। किन्तु पुण्यात्मा सेवाभावी सज्जनों द्वारा हाथों-हाथ सदस्य बनें तो ७५ रूपये बचेंगे। ऐसे कुल १२५ रूपये का फायदा होगा और समय-शक्ति भी बचेगी। सेवाभावी सज्जनों द्वारा सदस्य बनने से डाकघर में एम. ओ. के लिए और बैंक में डी. डी. के लिए जाना नहीं पड़ेगा। इस प्रकार हर साल नवीनीकरण में साधकों का जो समय, शक्ति व पेट्रोल आदि खर्च होता है, वह बचेगा। बिना वेतन, बिना स्वार्थ, निष्काम कर्मयोगी सेवाभावी सज्जनों को एक वर्ष के बदले पाँच वर्ष की पुण्यमयी सेवा का मौका मिलेगा। अतः ऐसी सुविधाओं को देखते हुए हमें आशा है कि आप इस योजना का भरपूर लाभ उठायेंगे एवं औरों को भी प्रेरित करेंगे।

केवल भारत में ही नहीं, विदेशों में भी टी. वी. चैनलों पर पू. बापू के सत्संग-कार्यक्रमों की माँग

SONY टी. वी. चैनल पर हर रोज सुबह ७-३० बजे पूज्य बापू का 'ऋषि प्रसाद' सत्संग-कार्यक्रम केवल भारत में ही नहीं किन्तु विश्व के अन्य भागों में भी दर्शाया जाता है। यह 'ऋषि प्रसाद' सत्संग-कार्यक्रम लंदन के समयानुसार सुबह ७-३० बजे यूरोप एवं अफ्रीका में तथा न्यूयॉर्क के समयानुसार सुबह ७-३० बजे अमेरिका एवं केनेडा में दर्शाया जाता है। तदुपरांत, अमेरिका में दो सेटेलाईट चैनलों पर पू. बापू का सत्संग-कार्यक्रम दर्शाया जाता है। T. V. Asia चैनल इस्टर्न टाईम के मुताबिक सोमवार, बुधवार, शनिवार को सुबह ९ बजे तथा Asian-American Broadcasting Company इस्टर्न टाईम के मुताबिक हररोज सुबह ६ बजे एवं सुबह १० बजे दर्शाती है। भारत के भाई-बहन विदेशों में रहनेवाले अपने सगे-संबंधी, परिचितों-मित्रों को खबर कर सकते हैं।

शब्दब्रह्म का खेल : 2

१		२		३	ॐ	४		५
	ॐ		ॐ		ॐ		ॐ	
	ॐ		ॐ		ॐ	ॐ	६	
	ॐ		ॐ		ॐ	७		ॐ
ॐ	८			ॐ	९			१०
११		ॐ	ॐ	१२			ॐ	
	ॐ	ॐ	१३			ॐ	१४	
ॐ	१५				ॐ	१६		
१७		ॐ		ॐ	१८		ॐ	ॐ

बायें से दायें

१. शिकागो के विश्वधर्मसंसद में सर्वप्रथम ..... ने भारतीय वेदान्त की पताका फहराई (५)
४. साधक को साधनाकाल में सुमेरु की तरह ..... रहना चाहिए (३)
६. माँ पार्वतीजी का एक नाम (२)
७. हर गुरु ..... सुनहि जे काना। होहि सकल गोघात समाना॥ (२)
८. एक महान भारतीय नारी जिसने अपने सतीत्व के बल से सूर्य की गति को रोक दिया था (३)
९. ..... को नींबू के साथ लेने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। (४)
११. संन्यासी, तपी (२)
१२. प्राणायाम की एक प्रक्रिया (३)
१३. अरब खरब लों धन मिले, ... अस्त लों राज। तुलसी हरि के भजन बिन, सबै नरक को साज॥ (३)
१४. हवनादि में प्रयुक्त होनेवाला एक खाद्यान्न (२)
१५. अपने देश व समाज की रक्षा के लिए दी जानेवाली प्राणों की आहुति (४)
१६. ..... चक्की देख के, दिया कबीरा रोय। दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥ (३)
१७. कल करे सो आज कर, आज करे सो अब। ..... में परलय होयेगी, बहुरि करोगे कब॥(२)
१८. सुर..... मुनि सबकी यह रीति, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति। (२)

ऊपर से नीचे

१. राजा बलि के पिता (४)
२. मानवेतर योनि में एक जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी संत (५)
३. रामायण काल में विद्यमान एक राक्षस (४)
४. राजा जनक के एक ख्यातिप्राप्त पूर्वज का नाम (२)
५. अष्टसिद्धियों में से एक (३)
६. ..... चरित्रवाले पुरुषों के लिए सारी पृथ्वी एक परिवार के समान होती है (३)
७. एक ..... के माथे पर लाख पापिन को भार (३)
८. बालक, वृद्ध और नर-नारी, सभी प्रेरणा पाएँ भारी। एक बार जो दर्शन पाए, ... का अनुभव हो जाए॥ (२)
९. श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित दैवी संपत्ति (गुणों) में से एक (२)
१०. अमदावाद शहर का प्राचीन नाम (४)
११. कुबेर के सेवक (२)
१२. कलियुग का निवास ..... में माना जाता है, जो कि एक प्रकार की धातु होती है। (३)
१३. नानक पंथी साधुओं का एक भेद, त्यागी, संन्यासी (३)
१४. ऋग्वैदिक देवमंडल में वरुण को ..... का देवता बताया गया है। (२)
१५. ..... ही जीवन है, निर्बलता ही मौत है। (२)
१६. परब्रह्म परमेश्वर ..... एवं अचर जगत में संपूर्ण रूप से ओत-प्रोत हैं। (२)

*

शब्दब्रह्म के खेल : १ का उत्तर

ॐ	शि	व	ने	त्र	ॐ	नि	वृ	त्ति	ना	थ	ॐ
भ	व	न	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	त्ति	ॐ	भा	ॐ	रै
क्ति	ॐ	ग	णे	श	पु	री	ॐ	ॐ	जी	व	न
ॐ	ॐ	म	ॐ	ॐ	ष्प	ॐ	सु	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
ॐ	मा	न	सि	क	ॐ	ॐ	मे	ॐ	ना	सा	ग्र
मौ	न	ॐ	ॐ	र्ण	ॐ	दा	रु	ण	ॐ	ॐ	ह
त	ॐ	न	भ	ॐ	ॐ	दू	ॐ	ॐ	रा	व	ण
ॐ	स	म	य	ॐ	न	दी	ॐ	ॐ	ॐ	व्र	ॐ
म	न	न	ॐ	न	ॐ	न	ल	गु	फा	ॐ	ॐ
म	द	ॐ	स	र	म	द	ॐ	ह्य	ॐ	कृ	पा
ता	ॐ	प्रे	र	क	ॐ	या	ॐ	ॐ	भा	ॐ	व
ॐ	वि	म	ल	ॐ	तु	ल	सी	ॐ	व	च	न

पूज्य बापू और 'ऋषि प्रसाद'

युवा पीढ़ी में संस्कार सिंचन द्वारा राष्ट्र-निर्माण अभियान

महोदय,

यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे विद्यालय के शिक्षकगणों एवं विद्यार्थियों को पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के पावन सान्निध्य में विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर संपन्न करने का अनुपम सुअवसर प्राप्त हुआ।

इस विलक्षण शिविर के अनुभवों एवं लाभों को स्मरण करके हमें अत्यधिक आनंद हो रहा है। इस शिविर के माध्यम से पूज्य श्री बापूजी ने शिक्षकगणों एवं विद्यार्थियों को सुसंस्कारों से सिंचित करके उनके जीवन को नई दिशा प्रदान की है।

आज समाज में नैतिक मूल्यों का जो पतन हो रहा है, उसका मूल कारण है सही शिक्षण के साथ नैतिक शिक्षा का अभाव। हमारा ऐसा अनुभव है कि विद्यार्थियों में ऐसे सुसंस्कारों का सिंचन अत्यावश्यक है, जो उनमें आत्मबल, सामर्थ्य, ओज एवं तेज का विकास करे। तभी हमारी युवा पीढ़ी राष्ट्र-निर्माण में भागीदार होगी। संत श्री आसारामजी आश्रम एवं श्री योग वेदांत सेवा समितियों द्वारा इस दिशा में किये जा रहे सत्प्रयास सराहनीय एवं अनुकरणीय हैं।

पूज्यश्री की अनुभवयुक्त वाणी से ओत-प्रोत मासिक पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' एक ऐसा दिव्य एवं अमृततुल्य प्रसाद है, जो जिज्ञासु पाठकों के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए भी उतना ही उपयोगी है। इसके पठन एवं मनन से हमारे छात्र सही दिशा में विचार करने में सक्षम होंगे एवं उनकी मानसिक शक्तियों का विकास होगा। उन्हें अपनी संस्कृति को निकट से जानने का मौका मिलेगा। इन्हीं लाभों को दृष्टिगत करके हमारे विद्यालय के सभी १५०० विद्यार्थियों ने 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता ग्रहण कर ली है।

भारतवर्ष के सभी विद्यालयों के आचार्यगणों से मेरा निवेदन है कि वे स्वयं भी 'ऋषि प्रसाद' का पठन करें एवं छात्रों को इसके लिए प्रेरित करें, जिससे कि भारत की युवा पीढ़ी लुप्त हो रहे वैदिक ज्ञान से लाभान्वित हो एवं सशक्त राष्ट्र-निर्माण में सहायक हो।

मैं इस दैवी कार्य से जुड़े हुए सभी सेवाधारियों को हार्दिक बधाइयाँ देता हूँ एवं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि आप, हम सभी मिलकर इस दैवी कार्य में आगे बढ़ें।

हरि ॐ...

राजकुमार खुराना
निदेशक,
शांति ज्ञान निकेतन डे बोर्डिंग स्कूल,
ग्राम-गोयला, नजफगढ़, नई दिल्ली।

*

बचपन से ही नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का संवर्धन करने का एक नया उपक्रम : लुधियाना में संत श्री आसारामजी विद्या मंदिर।

औरंगाबाद समिति (महा.) ने योग, ज्ञान एवं भारतीय संस्कृति की महानता इन विषयों पर विद्यार्थियों की वक्तृत्व-स्पर्धा का आयोजन किया। श्रेष्ठ विद्यार्थियों एवं आदर्श शिक्षकों को इनाम देकर सम्मानित किया। ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन देश में जगह-जगह पर किया जाए तो इससे देशवासियों को बहुत लाभ होगा।

पूज्यश्री की पीयूषवर्षी अमृतवाणी का रसास्वादन करते हुए जालंधर (पंजाब) के श्रद्धालु भक्तगण।

गाँधीनगर (गुज.) में आयोजित विश्वशांति सत्संग समारोह में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेल एवं महामहिम राज्यपाल श्री अंशुमान सिंह पूज्यश्री को माल्यार्पण कर तथा प्रमुख विपक्षी राजनेता श्री अमरसिंह चौधरी पूज्य बापू की भावपूर्वक आरती उतारकर आशीर्वचन ले रहे हैं।

REGISTERED WITH R.N.I. UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST W/O PRE-PAYMENT AHMEDABAD PSO LICENCE NO. 207 Regd. No. GAMC/1132. BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 03 Regd. No. MH/MNV-02.